शेरशाह सूरी

राष्ट्रीय जीवनचरित

शेरशाह सूरी

विद्या भास्कर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2433-0

पहला संस्करण : 1972
पांचवीं आवृत्ति : 1998 *(शक 1920)*

SHERSHAH SURI *(Hindi)*

रु. 26.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

1. पूर्वज और बचपन

शेरशाह सूरी का भारत के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। इसके जीवनचरित के एक प्राचीन लेखक अब्बास खान ने 'तारीखे शेरशाही' नामक पुस्तक में इसे 'द्वितीय सिकंदर' कहा है। यह ग्रंथ अकबर के आदेश से लिखा गया था। इसका उद्देश्य अफगानों का इतिहास अंकित करना था। वह उन थोड़े से विदेशी शासकों में से एक था जिन्होंने भारत जैसे विशाल देश को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। नागरिक सुविधाओं और यातायात के साधनों का विस्तार किया। इसने अनेक विदेशी आक्रमणकारियों का विरोध किया और इसे हिंदुस्तान के मूल निवासियों का स्नेह, सहयोग और समर्थन प्राप्त करने में सफलता मिली। इतिहासकारों का कहना है कि अपने समय में शेरशाह सूरी अत्यंत दूरदर्शी और विशिष्ट सूझबूझ का आदमी था। इसकी विशेषता इसलिए अधिक उल्लेखनीय है कि वह एक साधारण जागीदार का उपेक्षित बालक था। उसने अपनी वीरता, अदम्य साहस और परिश्रम के बल पर दिल्ली के सिंहासन पर अपना कब्जा जमाया।

जिन दिनों अफगानों के साहू खेल कबीले के सरदार सुलतान बहलोल ने दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार स्थापित कर रखा था, उन दिनों देश की हालत बहुत खराब थी। हिंदुस्तान अनेक राज्यों में बंटा हुआ था। कई स्वतंत्र सरदार राज्य कर रहे थे और उन्होंने अपने निजी सिक्के ढलवा रखे थे, खुतबा पढ़वाते थे और केंद्रीय शासक सुलतान बहलोल का विरोध भी करते थे। सुलतान बहलोल इस बात का बड़ा इच्छुक था कि अफगानिस्तान के अधिक से अधिक लोग आकर हिंदुस्तान में बसें। उसने अफगानों को नौकरी और जीविका के अनेक साधन प्रदान करने का वचन दिया। उसके स्नेह और उदारतापूर्ण निमंत्रण और आग्रह को स्वीकार कर अफगान लोग भारी संख्या में भारत में आने लगे और उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार जागीरें और अन्य सुविधाएं भी मिलने लगीं। सुलतान बहलोल का शासन काल सन 1451 से 1488 ईस्वी तक माना गया है।

सुलतान बहलोल की इस उदारता से लाभ उठाने की इच्छा से भारत की ओर आकर्षित हुए लोगों में शेरशाह का पितामह (दादा) इब्राहीम खान सूरी भी था जो अपने पुत्र हसन खान सूरी को साथ लेकर अफगानिस्तान से हिंदुस्तान में आया था। उसके मूल निवास स्थान को अफगानों की भाषा में 'शरगरी' और मुलतानी भाषा में 'रोहरी' कहा जाता था। 'सूर' अफगान अपने को मोहम्मद सूर नामक सरदार का वंशज बताते थे जिसका संबंध गोरी राज्यवंश से था और जो अपने देश से अफगानिस्तान में आ गया था। मोहम्मद सूर ने अफगानिस्तान में बस जाने पर सरदार की पुत्री से विवाह कर लिया था। 'शरगरी' नामक स्थान गोमल नदी के किनारे सुलेमान पर्वत की लगभग 12-14 मील (18-20 किलोमीटर) लंबी एक श्रेणी पर बसा था। ये लोग सुलतान बहलोल के जागीरदार मुहब्बत खान सूर की सेवा में भरती हो गए। इस (मुहम्मद खान सूर) सरदार को बहलोल ने हरियाणा और बहकला के तत्कालीन पंजाब स्थित परगने जागीर में दे रखे थे। इब्राहीम खां सूर अपने परिवार सहित बजवाड़ा के परगने में रहने लगा।

'तारीखे खान जहान लोदी' के अनुसार शेरशाह का जन्म हिसार फिरोजा[1] में सुलतान बहलोल के शासनकाल में हुआ। उसका नाम फरीद खान रखा गया।

इब्राहीम के पौत्र और हसन के प्रथम पुत्र फरीद के जन्म की तिथि अंग्रेज इतिहासकार ने सन 1485-1486 बताई है। शेरशाह सूरी पर विशेष खोज करने वाले भारतीय विद्वान श्री कालिका रंजन कानूनगो ने भी फरीद का जन्मकाल सन 1486 माना है।

कुछ समय बाद इब्राहीम खान ने मुहब्बत खान की सेवा छोड़ दी और हिसार फिरोजा के नायक जमाल खान सारंगखानी की सेवा ग्रहण कर ली। इस सरदार ने उसे नारनौल के परगने में कई एक गांव देकर चालीस घुड़सवारों की एक सैनिक टुकड़ी रखने के योग्य बनाया। फरीद खान (बाद में शेरशाह) के पिता हसन खान ने मसनदे अली उमर खान सरवानी कालकापुर की सेवा ग्रहण की। यह सरदार खाने-आजम की उपाधि से विभूषित था और सुलतान बहलोल का मंत्री और कृपापात्र दरबारी था। लाहौर के सूबे का शासन भी उमर खान के हाथ में था और उसे सरहिंद की सरकार में स्थित भटनूट, शाहाबाद और पाहलपुर की जागीरें भी दी गई थीं। उमर खान ने शाहाबाद परगने में अनेक गांव हसन खान को जागीर के रूप में दे दिए।

---

1. मजखने अफगाना के अनुसार यह स्थान दिल्ली जिले में था, जिसे फिरोज़ तुगलक ने बसाया था।

फरीद खान बचपन से ही बड़े हौसले वाला इंसान था। उसने अपने पिता से आग्रह किया कि मुझे अपने मसनदेआली उमर खान के पास ले चलिए और प्रार्थना कीजिए कि वह मुझे मेरे योग्य कोई काम दें। पिता ने पुत्र की बात यह कहकर टाल दी कि अभी तुम बच्चे हो। बड़े होने पर तुम्हें ले चलूंगा। किंतु फरीद ने अपनी मां से आग्रह किया कि आप पिता को इस बात के लिए राजी कीजिए। वैसा ही हुआ और पत्नी के कहने पर हसन अपने पुत्र फरीद को उमर खान के दरबार में ले गया और फरीद की ओर से उसकी इच्छा व्यक्त की। उमर खान ने कहा कि बड़ा होने पर इसे मैं कोई न कोई काम दूंगा। किंतु अभी इसे महाबली (इसका दूसरा नाम 'हनी' है) ग्राम का बलहू नामक भाग जागीर के रूप में देता हूं। फरीद ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी माता को इसकी सूचना दी।

इसके कई वर्ष बाद हसन खान के पिता इब्राहीम खान की नासौल में मृत्यु हो गई। वह उस समय जमाल खान का सेवक था। हसन खान से उसके पिता की मृत्यु का समाचार पाकर उमर खान ने (हसन खान के मसनदेआली जो बहलोल की सेना में था) जमाल खान को बुलाकर कहा कि हसन खान को उसके पिता की जागीर देने के साथ ही कुछ और गांव दे दीजिए। उसने अपनी ओर से भी हसन खान को एक घोड़ा और एक खिलअत देकर विदा किया। हसन खान ने जमाल खान की खूब सेवा कर उसे प्रसन्न कर दिया।

बहलोल की मृत्यु हो जाने पर सिकंदर लोदी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसने अपने भाई बैबक खान (बरबक खान) से जौनपुर का सूबा जीत लिया। उसने जमाल खान को जौनपुर का शासक नियुक्त किया और उसे आदेश दिया कि वह 12 हजार घुड़सवारों की व्यवस्था करके उनमें जौनपुर के सूबे को जागीरों के रूप में बांट दे। जमाल खान, हसन खान को जिसकी सेवा से वह बहुत प्रसन्न था, जौनपुर ले आया और उसे 500 घुड़सवारों की सेना की व्यवस्था के लिए बनारस के समीप सहसराम, हाजीपुर और टांडा की जागीरें प्रदान कर दीं।

हसन खान के आठ लड़के थे। फरीद खान और निजाम खान एक ही अफगान माता से पैदा हुए थे। अली और यूसुफ एक मां से। खुर्रम (कुछ ग्रंथों में यह नाम मुदहिर है) और शाखी खान एक अन्य मां से और सुलेमान और अहमद चौथी मां से उत्पन्न हुए थे। फरीद की मां बड़ी सीधी-सादी, सहनशील और बुद्धिमान थी। फरीद के पिता ने इस विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त अन्य तीन दासियों को हरम में रख लिया था। बाद में इन्हें पत्नी का स्थान प्राप्त हुआ। फरीद और निजाम के अतिरिक्त शेष छह पुत्र इन्हीं की संतान थे। कुछ समय बाद हसन खान, फरीद

और निजाम की मां से उदासीन और दासियों के प्रति आसक्त रहने लगा। वह सुलेमान और अहमद खान की मां के प्रति विशेष आसक्त था। वह इसे अधिक चाहने लगा था। इस कारण कौटुंबिक विवाद खड़ा होने लगा। हसन की यह चहेती (सुलेमान और अहमद खान की मां) फरीद और निजाम की मां से जलती थी क्योंकि सबसे बड़ा होने के कारण फरीद जागीर का हकदार था। इस परिस्थिति में फरीद का दुखी होना स्वाभाविक था। पिता उसकी ओर से उदासीन रहने लगा। पिता-पुत्र के आपसी संबंध कटु हो गए। इसका एक अच्छा फल भी हुआ। पिता की उदासीनता, विमाता की निष्ठुरता, माता की गंभीरता और परिवार में बढ़ते हुए विद्वेषमय वातावरण से बालक फरीद शुरू से ही गंभीर, दृढ़निश्चयी और आत्मनिर्भर होने लगा। यद्यपि नारनौल से सहसराम और खवासपुर पहुंचकर तथा वहां बड़ी जागीर पा जाने से हसन खान का दर्जा बढ़ गया था, तथापि फरीद और निजाम तथा इनकी माता के प्रति हसन के व्यवहार में अवनति ही होती गई। बाप-बेटे का संबंध दिन पर दिन बिगड़ता ही गया। फरीद रुष्ट होकर जौनपुर चला गया और स्वयं जमाल खान की सेवा में उपस्थित हो गया। जब हसन खान को पता चला कि फरीद जौनपुर चला गया है तब उसे यह भय हुआ कि कहीं वह जमाल खान से मेरी शिकायत न कर दे। अतः उसने जमाल खान को पत्र लिखा कि फरीद मुझसे रुष्ट होकर आपके पास चला गया है। कृपया उसे मनाकर मेरे पास भेज देने का कष्ट करें। यदि वह आपके कहने पर भी घर वापस आने के लिए तैयार न हो तो आप उसे अपनी सेवा में रखकर उसके लिए धार्मिक आचार शास्त्र की शिक्षा का प्रबंध करने की अनुकंपा करें।

जमाल खान ने फरीद खान को बुलवाकर हर संभव विधि से उसे समझाने की चेष्टा की कि वह अपने पिता के पास वापस लौट जाए, परंतु उसने घर जाने से इनकार करते हुए उत्तर दिया—"यदि मेरे पिता मुझे घर बुलवाकर मेरे अध्ययन की व्यवस्था करने के लिए चिंतित हैं तो मेरे लिए जौनपुर में रहकर ही विद्याध्ययन करना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि यहां पर बड़े बड़े विद्वान और योग्य व्यक्ति हैं।"[1] जमाल खान ने जब देखा कि फरीद खान जौनपुर में रहकर पढ़ना चाहता है तब उसने कोई आपत्ति नहीं की।

फरीद खान ने जौनपुर में रहते हुए अरबी भाषा काजी शाहबुद्दीन की टीका सहित काफिया (व्याकरण का ग्रंथ) और अनेक प्राचीन राजाओं की जीवनियों को दत्तचित्त होकर पढ़ना शुरू कर दिया। उसने कई दार्शनिकों के ग्रंथ पढ़े। उसने

---

1. तारीखे-शेरशाही—अब्बास सरवानी

सिकंदरनामा, गुलिस्तां और बोस्तां आदि ग्रंथों को कंठस्थ कर लिया। सम्राट बन जाने के बाद भी जब कोई विद्वान उसके पास जीविका की याचना के लिए आता था तो वह उससे हाशियाये-हिंदिया के संबंध में पूछताछ किया करता था। यह पुस्तक उसे बहुत प्रिय थी। सम्राट बन जाने पर भी उसकी दिलचस्पी इतिहास के ग्रंथों और प्राचीन शासकों के जीवनचरितों के प्रति बराबर बनी रही। जिस ग्रंथ के बारे में भी वह दूसरों से प्रशंसा सुनता उसे वह बड़े ध्यान से पढ़ता। बड़ा होने पर वह राज्य विस्तार के लिए युद्ध करता या शासन प्रबंध की देखभाल करता तब भी पुस्तकों का अध्ययन किया करता था। पुस्तकों में लिखी बातों को वह जीवन में उतारने का सफलतापूर्वक प्रयास करता। इसीलिए वह पुराने योद्धाओं और विजेताओं की कहानियां विशेष रूप में पढ़ा करता था। श्री कालिकारंजन कानूनगो ने शेरशाह (फरीद खान) के विद्या व्यसन की प्रशंसा में लिखा है कि ''बचपन में उसने साहित्य का जो अध्ययन किया उसने उस सैनिक जीवन के मार्ग से उसे पृथक कर दिया जिसपर शिवाजी, हैदरअली और रणजीतसिंह जैसे निरक्षर वीर साधारण परिस्थिति से ऊंचे उठकर राजा की मर्यादा प्राप्त कर लेते हैं। भारत के इतिहास में हमें दूसरा कोई व्यक्ति नहीं मिलता जो अपने प्रारंभिक जीवन में सैनिक रहे बिना ही एक राज्य की नींव डालने में समर्थ हुआ हो।''

2. शासन

उन परिस्थितियों का ध्यान रखना आवश्यक है जिनमें फरीद खान को पहले-पहल शासन और राज्य विस्तार के अपने विचारों और इच्छाशक्ति का उपयोग करने का अवसर प्राप्त हुआ। बाल्यावस्था का पुस्तक-प्रेम और इसी आरंभिक प्रशासकीय अनुभव ने उसे भविष्य में समस्त भारत का बहुत बड़ा प्रशासक बनने की क्षमता प्रदान की।

जमाल खान से किसी विषय पर परामर्श करने और आदेश प्राप्त करने जब हसन खान जौनपुर आया तब उसके अनेक पारिवारिक मित्रों ने यह प्रयास किया कि पिता-पुत्र की आपसी अनबन समाप्त हो जाए और फरीद अपने पिता के साथ रहकर जीवन को सफल बनाने का उद्योग करे। इन मध्यस्थ व्यक्तियों ने हसन खान को समझाया कि अपने सबसे बड़े लड़के के प्रति आपकी उदासीनता की नीति उचित नहीं है। आपको चाहिए कि आप फरीद को अपने साथ ले जाएं और दो परगनों का पूरा अधिकार उसे दें। हसन खान के मित्रों ने उसे यह भी समझाया कि दासी की बात मानकर आपका फरीद के प्रति ऐसा व्यवहार ठीक नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि सूर वंश में फरीद जैसा सुयोग्य, कर्मठ, प्रतिभाशाली व्यक्ति दूसरा नहीं है। हसन खान के स्वामी जमाल खान ने भी उसे समझाया कि फरीद खान जैसे प्रतिभावान पुत्र की उपेक्षा करना ठीक नहीं है। हसन खान ने अपने मित्रों और स्वामी के परामर्श को स्वीकार कर लिया।

इसी बीच इसी तरह का दबाव पिता-पुत्र के हितेच्छु मित्रों ने फरीद खान पर भी डाला। उसे समझाया गया कि हसन खान ने तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करना स्वीकार कर लिया है, इसलिए तुम्हारा भी कर्तव्य है कि तुम हमारी बातों को मान लो। फरीद खान ने कहा कि "मैं आपकी सलाह मानकर उसके अनुसार कार्य करने को तैयार हूं, किंतु मुझे इस बात की शंका है कि मेरा पिता जब अपनी दासी पत्नी के पास पहुंचेगा तब पुनः उसके इशारे पर नाचने लगेगा।" उसके हितैषियों ने उसे आश्वासन दिया कि यदि तुम्हारे पिता अपनी बात पर डटे न रहेंगे तो हम उनके

व्यवहार की निंदा और प्रतिवाद करेंगे।

फरीद खान ने इस आश्वासन को स्वीकार किया और कहा कि "मैं आप लोगों के संतोष के लिए इन दो परगनों के शासन का भार स्वीकार कर लेता हूं और आपको वचन देता हूं कि मैं यथाशक्ति अपने कर्तव्य का पालन करूंगा।" फरीद खान को इसका संतोष रहा कि उसे स्वतंत्र रूप से शासन-व्यवस्था करने का अवसर मिल रहा है। उसे इस बात का भी संतोष रहा कि पिता को मेरी बात मान लेनी पड़ी। इस अवसर क़ा उसने पूरा पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया और इस निम्नतम स्तर से उच्चतम शिखर पर पहुंच जाने का अपने मन में दृढ़ संकल्प भी कर लिया।

मित्रों के बीच-बचाव से पिता-पुत्र का मेल हो गया और दोनों अपनी जागीर की ओर चल पड़े। हसन खान ने वायदे के मुताबिक दो परगनों का शासन भार पुत्र को देना चाहा। परंतु पुत्र फरीद खान ने एक शर्त रखी। उसने कहा—"अनेक सैनिकों, अधीनस्थ पदाधिकारियों और हमारे संबंधियों की जागीरें इन्हीं परगनों में हैं। मैं इन क्षेत्रों को सुव्यवस्थित और सुसंपन्न करने का यथाशक्ति प्रयास करूंगा और यह तभी संभव होगा जब मैं विद्वानों और अन्य श्रेष्ठ जनों के कथनानुसार इन परगनों का शासन न्याय और सुव्यवस्था के आधार पर चला सकूं।"

कुछ इतिहासकारों ने कहा है कि फरीद खान ने अपने पिता से ये बातें एक पत्र में कही थीं। उसकी शब्दावली इस आशय की बतलाई जाती है—"न्याय ही राज्य का मुख्य आधार और उन्नति का मूल है। अन्याय बड़ी भयंकर और दूषित वस्तु है। यह शासनाधार को जीर्ण कर राज्य का विनाश कर डालती है। मुझे मालूम है कि आपके कुछ रिश्तेदार जिनको परगने में जमीन मिली हुई है, और कुछ मुकद्दम (पटवारी लेखापाल) प्रजा पर बड़ा अन्याय कर रहे हैं। मैं उन्हें अच्छी तरह सलाह देकर समझाने की कोशिश करूंगा। परंतु यदि वे मेरी चेतावनी की परवाह न करेंगे तो मैं उन्हें पर्याप्त दंड दूंगा, जिससे उन्हें अपना कर्तव्य पालन करने की शिक्षा मिले। यदि आप इस संबंध में पूर्ण अधिकार न देंगे और मेरे प्रबंध में हस्तक्षेप करने से विरत न होंगे तो मैं अपने कर्तव्य का पालन न कर सकूंगा।"[1]

हसन खान का अपने पुत्र की इस दूरदर्शिता और विवेकपूर्ण कथन से प्रसन्न होना स्वाभाविक था। उसे यह बात समझने में देर नहीं लगी कि उसका ज्येष्ठ पुत्र परगनों की ऐसी व्यवस्था करना चाहता है जिससे उसे अपने अधिकार-क्षेत्र का विस्तार करने की क्षमता और शक्ति प्राप्त हो जाए। अतः उसने कहा—"मैं तुम्हें सैनिकों

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

से उनकी जागीरें छीनने और उन्हें नई जागीरें देने का पूरा अधिकार देता हूं। मैं यह भी वचन देता हूं कि मैं तुम्हारे कार्य और अधिकार के क्षेत्र में कभी हस्तक्षेप न करूंगा।'' उसने अपने पुत्र को स्नेह और सम्मान के साथ इन दो परगनों का प्रबंध करने के लिए रवाना कर दिया। अब फरीद खान को स्वतंत्र रूप से अपने प्रशासन कौशल का प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हो गया। जीवन संग्राम में यह उसकी पहली विजय सिद्ध हुई।

जो दो परगने हसन खान ने अपने ज्येष्ठ पुत्र फरीद खान को सौंपे थे वे सहसराम और खवासपुर के नाम से विख्यात थे। उस समय दिल्ली पर सुलतान सिकंदर लोदी का आधिपत्य था।

3. जागीर का प्रबंध

जो दो परगने फरीद ने अपने पिता से प्राप्त किए थे, उनके नाम सहसराम और खवासपुर थे। इनका क्षेत्र और विस्तार क्या था और यह आजकल कहां तक माना जाएगा, यह कहना कठिन है। शायद इसे वर्तमान बिहार राज्य के आरा, बक्सर और सासाराम जिले के अंदर माना जा सकता है। अबुल फजल ने 'रोहतास सरकार' कहा है। अंग्रेज इतिहासकार रेनेल ने सन 1775 के नक्शे में इस क्षेत्र को शाहाबाद जिले के रोहतास इलाके में फैला हुआ दिखाया है। यह क्षेत्र उस समय दक्षिण बिहार का सीमा प्रांत था और इस कारण उसका सैनिक महत्व भी बहुत अधिक था। इसके दक्षिण में रोहतास की पहाड़ियां दूर तक फैली हुई थीं जिनमें उस समय एक अर्द्ध-स्वतंत्र अनार्य संप्रदाय के लोग रहते थे। इसके आगे स्वतंत्र हिंदू राज्य था। पूरब में सोन नदी बहती थी, पश्चिम में चांद नाम का परगना था जो मोहम्मद खान सूर के अधिकार में था। यह बाद में फरीद का शत्रु हो गया था। उत्तर में एक ओर हरिहरगंज था और दूसरी ओर रोहतास की सीमा थी। पुराने (अंग्रेजी काल के) सर्वेक्षण कर्ताओं की बात मानी जाए तो फरीद को मिले दो परगनों में वर्तमान बरोंग, सहसराम और तिलोथू का पूरा हिस्सा आ जाता था।

यह क्षेत्र उस समय बड़ा बीहड़ और कठिन माना जाता था और इसे वशीभूत कर नियम-कानून के अंदर ले आना टेढ़ी खीर थी। मुसलमानों ने बिहार के इस क्षेत्र पर हमला करते हुए इस क्षेत्र की 'चेर' और 'सावर' नामक अनार्य जातियों के अधीनस्थ उपजाऊ मैदान के निवासी परमार राजपूतों को, जो वर्तमान काल के भोजपुरी राजपूतों के पूर्वज कहे जाते हैं, खदेड़ कर अपना दखल जमा लिया था। परगने के उत्तरी भाग में मध्यम श्रेणी के हिंदू किसानों की बस्ती थी। इनमें क्षत्रिय और अहीर अधिक थे। चारों तरफ घने जंगल फैले हुए थे। इस जंगल में चोर, डाकू और प्रजा को सताने वाले विद्रोही जमींदार शरण पाते थे। उस समय इस क्षेत्र के निवासी विद्रोही थे और वे नियम-कानून नहीं मानते थे। फरीद को ये परगने इस

आशा से दिए गए थे कि वह यहां के निवासियों को कब्जे में ले आ सकेगा।

जिस समय फरीद खान को यह कठिन काम दिया गया था, उस समय समस्त उत्तर भारत में अशांति और अराजकता की स्थिति थी। जरा जरा-सी बात पर विद्रोह करना प्रजा का काम था तो दूसरी ओर शासक साधारण कारणों से भी जनता पर निर्मम अत्याचार करते थे। विद्रोह साधारण घटना बन गया था। साधारण जागीरों की हालत बहुत खराब थी। सैनिक जागीर तो उनसे भी बदतर थी। कृषकों के लिए सैनिकों से अपनी रक्षा करना कठिन समस्या थी। सैनिकों के लिए उन्हें बेगारी करनी पड़ती थी। उन्हें अनाज मुफ्त में देना पड़ता था। परिवार कुटुंब की स्त्रियों की इज्जत लूटने वाले सैनिकों से बचने के लिए किसान को तरह तरह के बहाने करने पड़ते थे, प्रलोभन देने पड़ते थे और अन्यान्य पदार्थों के दान करने पड़ते थे। किसान अपने ऊपर हो रहे अन्याय के विरुद्ध कहीं शिकायत नहीं कर सकता था। सुनने वाला कौन था ? जागीरदारों की खैरियत इसी में थी कि ऐसे अत्याचारों की ओर से आंखें मूंद लें। उनकी शिकायतों की अनसुनी कर दें। किसान लगान देकर इस बात का विश्वास भी नहीं प्राप्त कर सकता था कि उसकी जान और माल की हिफाजत सरकार करेगी। हिंदू रैयत और भी अधिक प्रपीड़ित थी। उनके प्रति तनिक भी रियायत या दया नहीं दिखाई जाती थी। किसानों और खेतिहर मजदूरों में हिंदुओं की संख्या अधिक थी। उन किसानों की तुलना भेड़ों के उन झुंडों से की गई है जिनका कोई हकवारा भी नहीं था जो भेड़ियों से उन्हें बचा सके।

इन किसानों पर अत्याचार करने वाले कुछ हिंदू भी थे। ये मुकद्दम और पटवारी थे जो जागीरदार और किसानों के बीच रहते थे और दोनों को धोखा देकर दोनों को लूटते रहते थे। ये जागीरदार को यह नहीं बताते थे कि हमारी जागीर कितनी है और उससे हमें कुल आमदनी कितनी होती है। पैदावार कितनी थी यह बात भी छिपाकर रखी जाती थी। इस कारण जागीरदार इन दोनों के बहकावे में पड़कर हर एक गांव से प्राप्त होनेवाली मालगुजारी की रकम बांध देते थे। ये मुकद्दम और पटवारी उसके आधार पर किसानों से तरह तरह के करों के नाम पर रकम वसूल करते थे और जागीरदार को यह बात ठीक से बतलाते भी नहीं थे कि कितनी आय किस मद में हुई। इस तरह निराश्रित और लूटे जा रहे किसानों में से जो दबंग या तगड़े थे, वह भी लूटमार का पेशा अपना लेते थे और अपने ही भाई किसानों को सताते थे। बाकी किसान चुपचाप अत्याचार सहन करने को विवश थे। अनेक किसान गांव, घर, जमीन वगैरह छोड़कर दूसरे इलाकों में ऐसे जागीरदारों की शरण में चले जाते थे जिनसे उन्हें रक्षा पाने की आशा हो। ऐसी हालत में खेती का पेशा बहुत तकलीफदेह

था। उपज वाली खेती का रकबा छोटा होता जाता था और घने जंगलों का रकबा बढ़ता जाता था।

फरीद को जब यह परगने मिले तब उसने इस हालत को ठीक करने की योजना बनाई। उसने खेती के तरीके, लगान की शरह और वसूली के इंतजाम वगैरह सब कुछ को बदलने का इरादा किया। उसने सुधार और परिवर्तन के उद्देश्य से कई नियम बनाए।

उसने उस पुरातन 16वीं शताब्दी में ही कृषि को देश की अर्थ-व्यवस्था का मूलाधार घोषित किया। उसने कहा–"किसान ही संपन्नता के स्रोत हैं।" उसने अच्छी तरह समझ लिया कि परगनों की हालत ठीक करने और उन्हें संपन्न बनाने के लिए सबसे पहले किसानों की हालत में सुधार करना पड़ेगा। कृषकों की संख्या की अधिकता को उसने श्रीवृद्धि के लिए उपयोगी साधन माना और कहा कि किसानों की बड़ी तादाद के परिश्रम को संपदा में बदला जा सकता है। वास्तविक स्थिति उस समय और आज भी यही है कि किसान ही देश की संपदा बढ़ाने का मूल साधन है। फरीद ने यही बात कही थी–"किसानों से ही समृद्धि आएगी। मैं जानता हूं कि खेती गरीब किसानों पर निर्भर है। यदि उनकी हालत खराब रहेगी तो वह कुछ भी पैदा नहीं कर सकेंगे और यदि वे समृद्ध होंगे तो उपज अधिक कर सकेंगे।"[1]

परगने में पहुंचने पर फरीद ने मुकद्दमान (मुखियों), किसानों और पटवारियों (लेखपालों) को अपने दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। उसने सैनिकों को भी बुलाया। सबके उपस्थित हो जाने पर उसने उन्हें संबोधित करते हुए अपना उद्देश्य और कार्यक्रम बतलाया। उसने कहा, "मेरे पिता ने इन परगनों के सैनिकों और कर्मचारियों की नियुक्ति और विमुक्ति का पूरा अधिकार मुझे दे दिया है। मेरा यह संकल्प है कि मैं इन क्षेत्रों को सुव्यवस्थित करूंगा। इसी में तुम लोगों का भी हित निहित है। मैं यहां की व्यवस्था ठीक करके यश प्राप्त करने का अभिलाषी हूं।" उसने सैनिकों को भी यथोचित शब्दों में संबोधित कर प्रोत्साहित किया। उसने कृषकों से कहा–"आज से मैं तुम्हें आदेश देता हूं कि भूमि-कर तुम जिन्स (अनाज) में या नकदी, जैसी इच्छा हो, दे सकते हो। तुम वही तरीका अपनाओ जो तुम्हारे लिए उपयोगी और लाभदायक हो।"[2]

फरीद ने अपने कर्मचारियों से कहा कि–"मैं यह जानता हूं कि कर वसूल

---

1. तारीखे शेरशाही–अब्बास सरवानी

2. वही

करते समय तुम लोग कृषकों के साथ कितना कठोर व्यवहार करते हो। अतः मैंने जरीबाना और मुहासिलाना नामक कर निश्चित कर दिए हैं जिससे यदि तुम इन निर्धारित करों से ज्यादा किसानों से वसूल करोगे तो वह रकम तुम्हारे हिसाब में से काट ली जाएगी। यह भी याद रहे कि इन करों की वसूली का हिसाब मैं खुद अपने सामने लिया करूंगा। मैं किसानों से केवल निश्चित कर ही वसूल करवाऊंगा और देखूंगा कि रबी तथा खरीफ के कर उचित समय पर ही वसूल हो जाएं, क्योंकि कृषकों पर लगान बाकी रहने देने से परगने की शासन व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं चल सकती है और इसी से सरकारी नौकरों और किसानों में झगड़े होते हैं। शासक का कर्तव्य है कि लगान बांधते समय वास्तविक उपज को ध्यान में रखते हुए किसानों पर उदारता से लगान बांधे। परंतु लगान की वसूली के समय कठोरता से काम लेते हुए सारा लगान वसूल कर ले। यदि कोई किसान कोई बहाना करते हुए लगान देने से बचने का प्रयत्न करे तो शासक को ऐसी कठोरता का व्यवहार करना चाहिए कि उससे दूसरे किसानों को भी भय लगे।"[1] फरीद ने किसानों से कहा—"आप लोगों को जो भी कष्ट हो उसे सीधे मुझसे आकर कहिए क्योंकि आपके ऊपर अत्याचार करनेवालों को मैं कभी क्षमा नहीं करूंगा।"

उसके बाद उसने कर्मचारियों को संबोधित करते हुए कहा, "कृषक ही वस्तुतः परगने की समृद्धि के स्रोत हैं, आज मैंने उन्हें हर प्रकार का प्रोत्साहन देकर वापस भेज दिया है। मैं उनके हितों की सदैव रक्षा करूंगा और देखूंगा कि उन्हें किसी प्रकार का अत्याचारजन्य कष्ट सहन न करना पड़े, क्योंकि यदि कोई शासक असहाय कृषकों को अत्याचारी कर्मचारियों से नहीं बचा सकता है तो उसके लिए उनसे लगान लेना भी सर्वथा अनुचित है। मैंने सुना है कि इन परगनों में कुछ ऐसे अत्याचारी और विद्रोही जमींदार हैं जो किसानों पर अत्याचार करते हैं, अपना लगान राजकोष में जमा नहीं करते हैं और परगनाधीशों की आज्ञा की अवहेलना करते हैं, बुलाने पर सामने आकर उपस्थित नहीं होते।" फरीद ने अपने कर्मचारियों से यह जानना चाहा कि ऐसे जमींदारों को वश में करने का क्या उपाय किया जाए। कर्मचारियों ने उत्तर दिया कि इस समय तो अधिकांश सैनिक मियां हसन के पास हैं। उन्हें यहां बुला लीजिए। उनके यहां आ जाने पर हम इन विद्रोहियों पर हमला कर देंगे।

फरीद ने अपने पिता के सरदारों को आदेश भेजे कि आप दो सौ घोड़े तैयार करें और परगने में जितने भी सैनिक मिल सकें उन्हें इकट्ठा कर लें। इसके बाद उसने

---

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

उन सारे अफगानों को बुलवाया जिनके पास जागीरें नहीं थीं और उनसे कहा—"मियां हसन के सैनिकों के आने तक मैं तुम लोगों के लिए भोजन और वस्त्र की व्यवस्था करूंगा। तुम लोग विद्रोहियों को वश करने में मेरी सहायता करो। विद्रोहियों से जो चीजें तुम लूट लोगे, वह तुम्हारी होंगी। घोड़े तो मैं स्वयं तुम्हें दूंगा; लेकिन तुम में से जो अधिक साहसी और वीर प्रमाणित होगा उसके लिए मैं अपने पिता से जागीर प्राप्त करने का प्रबंध करूंगा।"[1] इससे अफगान रंगरूटों में फरीद खान के प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि हम तुम्हारी भरपूर सहायता करेंगे। फरीद खान ने इन्हें धन और वस्त्र उपहार में देकर प्रसन्न रखने का प्रयास किया। उसके बाद उसने किसानों से यह कहकर घोड़े उधार लिए कि मुझे विद्रोही जमींदारों को दमन करने में इनसे काम लेना है। काम हो जाने पर तुम्हारे घोड़े लौटा दूंगा। अफगान सैनिकों और घोड़ों की सहायता से उसने विद्रोहियों पर हमला कर दिया। उसने उनके गांवों को लूटकर उनकी स्त्रियों, बच्चों, पशुओं और संपत्ति को अपने अधिकार में ले लिया। लूट-पाट में प्राप्त धन और पशु सैनिकों में बांट दिए। उसने विद्रोहियों के सरदारों को संदेश भेजा कि यदि मेरी अधीनता स्वीकार न करोगे तो मैं तुम्हें हर तरह की यातना दूंगा। तुम्हारे बीवी-बच्चों को मुक्त करने के बजाय उन्हें बेच दूंगा। तुम जिस गांव में जाकर शरण लोगे वहां के मुखिये तुम्हें मेरे सुपुर्द कर देंगे। यदि वह ऐसा न करेंगे तो मैं उनपर भी हमला कर दूंगा। इस चेतावनी से भयभीत होकर विद्रोही जमींदारों के मुखियों ने संदेश भेजा कि यदि हमारे पिछले अपराध क्षमा कर दिए जाएं तो हम आत्मसमर्पण कर देंगे और भविष्य में आपकी आज्ञाओं का पालन करेंगे। फरीद खान ने अपेक्षित जमानत लेकर विद्रोहियों के आश्वासन को मान लिया। विद्रोहियों ने भी लगान का शेष भाग राजकोष में जमा कर दिया और आवश्यक जमानत देकर अपने बीवी-बच्चों को मुक्त करा लिया।

इसके बाद भी जो विद्रोही बच रह गए थे, उनपर फरीद ने किसानों की सहायता से भारी पैमाने पर आक्रमण कर दिया। इन विद्रोहियों के गांवों से एक कोस (सवा तीन किलोमीटर) की दूरी पर रुककर उसने अपने सैनिकों को खाइयां खोदने, मोर्चाबंदी करने और पड़ोस के जंगल को काट देने का आदेश दिया।

इस प्रकार की घेराबंदी से विद्रोही हार गए। उन्होंने फरीद से क्षमा याचना की। फरीद ने उनसे सुलह करना स्वीकार नहीं किया। उसने अपने साथियों से कहा—"विद्रोहियों का प्रायः ऐसा ही व्यवहार होता है। पहले तो वह शासक के प्रति

---

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

विद्रोह और युद्ध करने का प्रयास करते हैं। यदि वे शासक को कमजोर देखते हैं तो विद्रोह जारी रखते हैं। परंतु यदि शासक बलवान हुआ तो छल, कपट और चतुराई से नम्रता प्रकट करते हुए उसे धन देकर प्रसन्न करना चाहते हैं जिससे वह उनकी ओर से निश्चिंत हो जाए। शासक के चले जाने के बाद वे अवसर पाते ही पुनः विद्रोह का झंडा खड़ा कर देते हैं।''

दूसरे दिन तड़के फरीद ने युद्ध की घोषणा की और विद्रोही जमींदारों पर हमला बोल दिया। उसने सारे विद्रोहियों को मौत के घाट उतार दिया और उनके बीवी बच्चों को दास बनाकर सैनिकों को दे दिया। उसने खाली गांवों में अपने वफादार लोगों को बसा दिया। इस कठोर दंड का प्रभाव बचे-खुचे विद्रोही जमींदारों पर पड़ा। उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया, पुराने अपराधों पर खेद प्रकट किया और वे चोरी-डाके के काम से दूर रहने लगे।

फरीद के इस प्रबंध-कौशल का बड़ा लाभ यह हुआ कि उसके परगनों के किसान खेती के काम में निश्चिंत होकर लग गए। इतना ही नहीं, किसानों को यह अनुभव हुआ कि शासन चलाने और शांति तथा व्यवस्था बनाए रखने में हम मदद कर रहे हैं। उसके कृषकों में से कुछ ने काश्त की पैमाइश के मुताबिक नगद लगान देने की इच्छा प्रकट की और कुछ ने फसल में हिस्सा देना ठीक समझा। फरीद ने दोनों प्रकार के लोगों की सुविधा के अनुसार उनसे शर्तें मंजूर करवा लीं और अपने सामने स्वीकृति लिखवाकर कर की दरें नियत कर दीं। उसने इसके साथ ही कर उगाहने वाले कर्मचारियों का वेतन और दैनिक भत्ता भी नियत कर दिया। इस नए प्रबंध से कारिंदों को स्वार्थ-हानि हुई। उनके अत्याचार हमेशा के लिए समाप्त हो गए। अब जागीरदार और रैयत के बीच सीधा संबंध स्थापित हो गया और दोनों एक-दूसरे पर आश्रित रहकर एक-दूसरे का लाभ देखने लगे। कृषकों और सैनिकों को अपनी शिकायतें स्वयं उपस्थित करने का मौका मिला। फरीद उनकी शिकायतों पर समुचित सावधानी से ध्यान देता था और शिकायतों की छानबीन कर उन्हें दूर करने की चेष्टा करता था। उसने अपने कर्तव्य पालन में कभी लापरवाही नहीं होने दी।

एक तरफ उपद्रवियों और विद्रोहियों का दमन और निर्मूलन तथा दूसरी तरफ कृषकों के उत्पीड़न की समाप्ति कर फरीद ने परगनों की व्यवस्था उत्तम कर दी। शीघ्र ही दोनों परगने सुसंपन्न हो गए।

जब मियां हसन को फरीद की इस सफलता का समाचार मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसे जहां कहीं अवसर मिलता वह अपने दरबारियों में और साथियों

के बीच परगनों की समृद्धि करने, विद्रोही जमींदारों का दमन करने में अपने पुत्र की वीरता और सफलता की प्रशंसा किया करता था। फरीद की योग्यता और कार्यकुशलता की ख्याति समूचे बिहार में फैल गई। बिहार के सभी अफगान सरदार उसकी प्रशंसा करने लगे। उसके मित्र और हितैषी भी प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करने लगे, किंतु अब भी सुलेमान की मां जैसे ईर्ष्यालु शत्रु उसका अहित ही देखना चाहते थे।

कुछ समय बीत जाने पर जब मियां हसन, जमाल खान के दरबार से अपने परगने सहसराम लौटे तब समस्त अधीनस्थ सामंतों और सैनिकों ने एक स्वर से अपनी संपन्नता का श्रेय फरीद को देते हुए उसकी प्रशंसा उसके पिता से की। उसने (हसन खान ने) स्वयं भी देखा कि परगनों की व्यवस्था बहुत सुंदर हुई है और परगनों का 'राजकोष' भरा-पूरा है तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। फरीद के प्रति उसके मन में जो आशंका और दुर्भाव थे वे दूर हो गए। उसने फरीद और उसके भाई निजाम को अनेक उपहार दिए और उनको सम्मानित किया। उसने उन दोनों से कहा—"अब मेरी वृद्धावस्था आ गई है। अपनी जागीर का प्रबंध करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। सैनिकों को नियंत्रित रखने की शक्ति मुझमें नहीं है। इसलिए तुम दोनों भाई अभी से, मेरे जीवन काल में ही, इन परगनों की देखभाल करो।"

लेकिन यह बात सुलेमान और उसकी मां को कैसे पसंद हो सकती थी ? उन दोनों ने मियां हसन के सामने वह समस्त धनराशि प्रस्तुत की जो फरीद ने सुलेमान को उसकी बहन की शादी के खर्च के लिए दे रखी थी और कहा कि फरीद खान इसी प्रकार अन्यायपूर्वक धन एकत्र कर इधर-उधर रखता है। इन दोनों ने प्रतिदिन फरीद की शिकायत करने का नियम बना लिया। मियां हसन ने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने उलटे यह कहा कि केवल तुम्हीं दोनों हो, जो उसकी शिकायत किया करते हो। कोई सैनिक, कोई सरदार ऐसा नहीं है जो भूलकर भी उसकी शिकायत करता हो। मैं फरीद की योग्यता से संतुष्ट और प्रसन्न हूं कि उसने मेरे दोनों परगनों की हालत सुधार दी और उन्हें सुव्यवस्थित और लाभदायक बना दिया।

जब एक अस्त्र व्यर्थ गया तब सुलेमान और उसकी मां ने दूसरा अस्त्र निकाला। सुलेमान की मां वही दासी थी जिसे हसन बहुत चाहता था और जिसके कारण उसने फरीद की मां का बहिष्कार कर रखा था। इस स्त्री ने हसन का बहिष्कार कर दिया। बोलना-चालना बंद कर दिया। उसके दर्शन और प्रेमालाप से वंचित हो जाने के कारण हसन खान दुखी हो गया। हसन खान की अवस्था ढलान पर थी। उसे वासना सताने लगी। उसे प्रेयसी दासी का विमुख हो जाना कठोर दंड जैसा जान पड़ने लगा। उसने

उसे बुलवाकर जब इस बेरुखी का कारण पूछा तब वह इसी अवसर की ताक में थी। उसने कहा—"आपके प्रेम की मैं बरसों तक पात्र और अधिकारिणी रही हूं। इस कारण परिवार के लोग मुझसे ईर्ष्या करते हैं। मैंने कभी किसी के प्रति दुर्व्यवहार नहीं किया। फरीद आपका बड़ा लड़का है और उसे उम्मीद है कि वह आपकी संपत्ति का उत्तराधिकारी होगा। आपके बाद हमारी क्या दुर्दशा होगी, इसकी कल्पना कीजिए। यदि आपको हमारे प्रति कुछ भी स्नेह है तो आपको चाहिए कि मेरे पुत्रों को भी परगनों का शासन देकर सम्मानित करें। यदि आप यह करने में असमर्थ हैं तो मेरे लिए इसके सिवाय क्या रास्ता है कि आपके सामने ही अपने पुत्रों को मार डालूं।" यह अस्त्र काम कर गया। हसन खान अब अपने बड़े पुत्रों फरीद खान और निजाम से विरक्त रहने लगा। वह इन दोनों के स्थान पर सुलेमान और उसके भाइयों को नियुक्त करने का विचार करने लगा। उसके इस विचार को पुष्ट करने के लिए सुलेमान की मां ने उसे शपथ दिलाई कि वह (हसन खान) फरीद खान को शासन-कार्य से अलग कर देगा।

हसन खान जब अपनी शपथ को कार्यरूप देने की चिंता कर रहा था तभी फरीद खान को सारी परिस्थिति स्पष्ट हो गई। उसने पिता से कहा कि आप मुझसे ईर्ष्या करने वालों की बातें सुनकर मुझे परेशान और अपमानित कर रहे हैं। आप उनके सभी आरोपों की जांच क्यों नहीं करा लेते। किंतु हसन खान को यही काम नहीं करना था। इससे बाप-बेटे में अनबन हो गई। दोनों में अक्सर क्रोधपूर्ण बातचीत भी होने लगी। दोनों के बीच घृणा की खाई तैयार हो गई।

किंतु हसन की प्रशंसा में एक बात कहना बहुत आवश्यक है। उसने फरीद को साफ साफ बतला दिया कि "मैं किन्हीं कारणों से विवश हो गया हूं। मैं जानता हूं कि सुलेमान और उसके भाई अयोग्य हैं और उनकी तुमसे कोई तुलना भी नहीं हैं। किंतु उनकी दिन-रात की परेशानी से बचने के लिए मेरे लिए यह जरूरी हो गया है कि मैं कुछ समय के लिए इन दोनों परगनों का इंतजाम उनके हाथों में दे दूं।" फरीद खान ने पिता की इस दयनीय दशा से परिचित होने के बाद घोषित किया—"ये दोनों परगने मेरे पिता की संपत्ति हैं और वे अपनी इच्छा के अनुसार किसी को भी इनका शासक नियुक्त कर सकते हैं।"[1] समझौते की कोई आशा नहीं रही। संबंधियों और मित्रों के सुलह कराने के प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए।

---

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

4. स्वावलंबी जीवन का आरंभ

स्वाभिमान की रक्षा करते हुए फरीद ने शासन-कार्य का स्वेच्छा से त्याग कर दिया। उसने स्वावलंबी जीवन का नया मार्ग अपनाया। वह आगरे की ओर चल पड़ा। उसने अपने शासन के दोनों परगनों के सरदारों, सैनिकों और जमींदारों की सहायता से अपनी गद्दी बनाए रखने की कुछ भी चिंता नहीं की। उसने संकल्प कर लिया कि अब से मैं स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करूंगा। अनुकूल और उचित समय देखकर सहसराम के परगनों को फिर से प्राप्त करने का संकल्प भी उसने मन ही मन कर लिया था।

पिता से किसी प्रकार की सहानुभूति प्राप्त होने की आशा छोड़कर और अपने स्नेही मित्रों से विदा लेकर फरीद कानपुर के रास्ते आगरे की ओर रवाना हुआ। उन दिनों कानपुर का परगना अजीम हुमायूं सरवानी की जागीर में सम्मिलित था और यहां इस जागीरदार के पास काफी सैनिक थे। अनेक सरवानी सैनिक इस परगने के आसपास बसे हुए थे। कानपुर में मियां हसन के संबंधी कुछ 'सरवानियों' ने उसकी बड़ी आवभगत की। इन सरवानियों में एक सूर भी था जिसका नाम इस्माइल था। फरीद के आग्रह पर इस्माइल उसके साथ चलने को राजी हो गया।

फरीद के साथ उसका भाई भी था। उस जमाने में उत्तर भारत का राजनीतिक केंद्र आगरा था। सुलतान सिकंदर के समय से ही इस नगर ने राजधानी का रूप धारण कर लिया था। उसका पुत्र सुलतान इब्राहिम सन 1517 में सिंहासन पर बैठा। फरीद ने आगरा पहुंचकर सुलतान इब्राहिम के मुख्य सलाहकार और शक्ति-संपन्न अमीर दौलत खान की नौकरी कर ली। कुछ ही दिनों में उसका मालिक उसके गुणों और योग्यता से प्रभावित और प्रसन्न हो गया। तब तक उधर फरीद के पिता मियां हसन की मृत्यु हो गई।

दौलत खान ने सुलतान से सिफारिश की कि हसन की जागीर फरीद के नाम कर दी जाए। सुलतान ने यह बात मान ली। सन 1520 में शाही फरमान लेकर फरीद सहसराम लौटा। उसके नातेदार, सैनिक और प्रजा बड़े खुश हुए। फरीद का

सौतेला भाई सुलेमान चौंद परगने के गवर्नर मुहम्मद खां सूर की शरण में भाग गया।

मुहम्मद खां सूर बड़ा शक्तिशाली शासक था। उसके पास पंद्रह सौ घुड़सवारों की नियमित वेतन भोगी सेना थी। उसने सुलेमान को मदद करने का वचन दिया। उसने फरीद को धमकाया कि यदि तुम यहां से भाग नहीं जाओगे तो मैं तुम्हारे ऊपर हमला करके तुम्हें भगा दूंगा। फरीद ने जिस सुलतान इब्राहिम के आदेश से जागीर पाई थी, उसका (सुलतान का) शासन शिथिल हो गया। पूर्वी प्रांतों के कई गवर्नरों ने विद्रोह कर दिया था। इनमें अवध के मौरूफ फारमूली, गाजीपुर के नसीर खां लोहानी और बिहार के दरिया खां लोहानी मुख्य थे। इन विद्रोहियों का सरदार दरिया खां था। विद्रोहियों ने बिहार से जौनपुर तक के विस्तृत क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था। दरिया खां ने बिहार नगर में अपना राज्य कायम किया, पर उसकी मृत्यु कुछ ही महीने में हो गई और उसके योग्य पुत्र बहर खां ने अपने को स्वतंत्र सम्राट घोषित कर दिया।

फरीद खान के परगने इसी साम्राज्य के भीतर आ गए थे। इसलिए उसने समझ लिया कि सुलतान का फरमान यहां चल नहीं सकेगा। अतः सन 1522 के लगभग वह बहर खां के आश्रय में चला गया।

जिस समय की यह बात है उस समय सुलतान इब्राहिम पानीपत की लड़ाई में बाबर के हाथों मर चुका था और बाबर ने सम्राट के रूप में दिल्ली पर अधिकार स्थापित कर लिया था।

कर्तव्यनिष्ठ फरीद खान को, जो अपने स्वभाव-गुण से ही परिश्रमी था और स्वामी के प्रति सेवा करने में कोई बात उठा न रखने की जिसकी आदत बन गई थी, यह फैसला करते देर न लगी कि बहर खान की सेवा करने में ही उसका कल्याण है और इसी से उसके भविष्य का निर्माण होगा। बहर खान को भी यह निर्णय करने में देर न लगी कि वह सेवक वास्तव में स्वामिभक्त, सुयोग्य और कठोर परिश्रमी होने के साथ ही सब तरह से विश्वसनीय है। दोनों के बीच घनिष्ठता बढ़ती गई। समस्त बिहार में उसकी ख्याति फैल गई। तब तक बहर खान ने बिहार को एक स्वतंत्र राज्य और अपने को 'सुलतान मुहम्मद' की उपाधि से सम्राट घोषित कर दिया था। उसके नाम से सिक्के ढाले जाने लगे।

बहर खान के साथ एक बार फरीद खान भी शिकार खेलने गया। शेर से सामना होने पर फरीद खान ने तलवार के एक ही प्रहार से उसका प्राणांत कर दिया। इससे बहर खान इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने फरीद खान को 'शेरखान' की उपाधि प्रदान की और उसे अपने पुत्र जलाल खान का शिक्षक और संरक्षक दोनों नियुक्त किया। काफी दिनों तक इस पद पर योग्यता से काम करने के बाद

अपने स्वामी से छुट्टी लेकर शेरखान अपने परगनों की देखभाल के लिए गया। शेरखान ने सुलतान मुहम्मद (वहर खान) से उस समय यह छुट्टी ली थी जब वह बक्सर में था। सम्राट बने हुए बाबर के पूरब की ओर बढ़ने की आशंका से सुलतान मुहम्मद में कन्नौज तक धावा किया। जब उसे यह विश्वास दिलाया गया कि वर्षा ऋतु के प्रारंभ हो जाने से अब बाबर आगे न बढ़ेगा तब सुलतान मुहम्मद बिहार लौटा। तभी शेरखान ने छुट्टी ली थी और उसे किन्हीं कारणों से लौटने में देर हो गई। इधर यह हालत थी, उधर मुगल बढ़ते आ रहे थे। कुछ विश्वासघाती अफगान सरदारों ने—जिनमें 'बयाजीद फारमूली' और 'मुहम्मद-खां-नूहानी' मुख्य थे—उन्हें निमंत्रित कर दिया था। हूमायूं की अध्यक्षता में मुगलों का यह आक्रमण आरंभ हुआ और पांच ही महीने के अंदर कन्नौज से बलिया तक के देश मुगलों ने विजय कर लिए। सुलतान मुहम्मद के दोनों प्रधान सहायकों—मौरूफ फारमूली और नसीर खां नूहानी को निकालकर हुमायूं ने बयाजीद और मुहम्मद खां को क्रमशः अवध और गाजीपुर का गवर्नर नियत किया तथा इनकी रक्षा के लिए जौनपुर में सुलतान जुनैद-बारलस को मुगल सेना के साथ वायसराय बनाकर रखा।

ऐसी हालत में शेरखान को लौटने में देर करते देख सुलतान मुहम्मद के दिल में उसके ऊपर शंका होने लगी। शेरखान के शत्रु मुहम्मद खान सूर ने मौका पाकर सुलतान से शेरखान की शिकायत की और जागीर छीनकर सुलेमान को दे देने का अनुरोध किया। सुलतान ने जागीर छीनना तो स्वीकार न किया, पर मुहम्मद खान को सुलेमान और शेरखान के बीच पंच बनाकर भेजा। शेरखान को जब ये बातें मालूम हुई, तब उसने बड़ा कड़ा जवाब दिया जिससे मुहम्मद खान बिगड़ गया और उसने शेरखान पर आक्रमण कर दिया। मुगल गवर्नर के आश्रय में—शेरखान ने कोई चारा न देखकर अपने प्रिय भाई निजाम की सलाह से सुलतान-जुनैद-बारलस का आश्रय लेने का निश्चय किया। पहले उसने बनारस जाकर सुलतान-जुनैद की सेवा में आदमी भेजा और रक्षा का वचन मिल जाने पर जौनपुर पहुंचा तथा मुगल-गवर्नर का आश्रय ग्रहण किया। यह घटना सन 1527 के आरंभ की है।

कनवा के युद्ध (मार्च 1527) के बाद सुलतान-जुनैद-बारलस ने 'बाबर' से मिलने के लिए आगरे की यात्रा की। शेरखान भी सुलतान के साथ गया। वहां सुलतान-जुनैद ने अपने भाई और बाबर के मंत्री मीर खलीफा से कहकर उसे बाबर की सेना में भर्ती करा दिया। शेरखान बाबर की सेना में लगभग सवा वर्ष तक रहा। सन 1528 के मध्य में जब बाबर ने पूर्वीय प्रांतों पर आक्रमण किया, तब शेरखान उसके साथ था। इसी आक्रमण में शेरखान को पुरस्कार-स्वरूप उसकी जागीर मिल गई।

5. बाबर से संपर्क और विरोध

शेरखान को अपने परगनों के अतिरिक्त सहसराम से 43 मील पश्चिम में चौंध और दूसरे सरकारी परगने भी प्राप्त हो गए। अब शेरखान ने अनेक अफगान भाइयों को जो पहाड़ियों में जाकर छिपे हुए थे, जागीरों की वृद्धि और अन्य प्रकार के उपहारों का प्रलोभन देकर अपने दरबार में बुलाया। उसने उन्हें अपने क्षेत्र के लाभ में सहयोगी बनने का निमंत्रण भी दिया और संकटकालीन परिस्थिति में सबको मिलकर आत्मसम्मान की रक्षा करने की आवश्यकता समझाई। इसमें उसे सफलता मिली और अनेक अफगान उसकी सेना में आ गए। उसके सैनिकों की संख्या बढ़ गई। उसने चौंध के पुराने शासक मुहम्मद खान सूर को जो बाबर के हमले के समय अपनी जागीर छोड़कर भाग गया था, सजातीयता के नाम पर आपस में मिलकर काम करने का महत्व समझाया और उसे लिखा कि आप आकर अपने परगने का शासन कीजिए। मुहम्मद खान ने यह बात मान ली। परिणाम यह हुआ कि शेरखान का एक ऐसा शत्रु कम हो गया जिससे उसे ज्यादा खतरा था, बल्कि उसपर उसका जन्मभर के लिए एहसान भी हो गया।

मुगल दरबार में शेरखान की धाक जमती गई। वह मुगलों की सैनिक व्यवस्था, शासन-प्रबंध, आचार-विचार और चारित्रिक विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करने लगा। किंतु मुगलों की व्यवस्था से वह प्रभावित न हो सका। वह अफगानों के बीच कहा करता था कि, ''यदि भाग्य ने मेरा साथ दिया तो मैं एक दिन निश्चय ही मुगलों को हिंदुस्तान से खदेड़कर निकाल बाहर करूंगा।'' जब शेख मुहम्मद जैसे लोगों ने भी उससे ऐसी शेखी न करने का आग्रह किया, तब भी उसने दृढ़ता से अपना यह संकल्प दुहराया और अफगानों से आपस में एकता बनाए रखने की अपील की। उसने अफगानों से कहा कि, ''मुगल दरबार भ्रष्टाचारियों से भरा हुआ है। उनके आचरण, व्यवहार और संघटन में कोई अनुशासन नहीं है। वे अपने मंत्रियों की सलाह पर चलते हैं जो सैनिकों, कृषकों और विद्रोही जमींदारों तक से घूस लेते हैं।'' मुगलों

के बारे में शेरखान के यह विचार मुगल दरबारी भी जान गए थे। (तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी)

संभवतः बाबर खुद शेरखान के बारे में सशंक हो गया था। उसने एक दिन एक दावत का आयोजन किया जिसमें शेरखान भी आमंत्रित किए गए। बाबर ने देखा कि कोई ऐसी समूची पकी चीज परोसी गई है जिसको खाने का तरीका शेरखान को नहीं मालूम था। उसने बिना किसी से पूछताछ किए अपने खंजर से उसके टुकड़े किए और चम्मच से खा गया। यह दृश्य देखकर बाबर की शंका बढ़ गई। उसने अपने दरबारियों से कहा कि, ''शेरखान के कार्यों पर निगाह रखो। वह बहुत चतुर व्यक्ति मालूम देता है। उसके ललाट पर प्रभुत्व के चिह्न अंकित हैं। मैंने अनेक अफगान वीर देखे हैं लेकिन किसी ने मुझे इस तरह पहली मुलाकात में प्रभावित नहीं किया है। इसे बंदी बना देना चाहिए। इसके बड़प्पन और प्रभुत्व के जो चिह्न हैं वह हमारे लिए खतरनाक हैं।''[1] किंतु बाबर ने अपने मुख्य दरबारी की सिफारिश पर इस आदेश का कार्यान्वयन स्थगित रखा। शेरखान इतना चतुर था कि वह वहां के वातावरण से भांप गया कि उसके बारे में कुछ प्रतिकूल चर्चा हो रही है। इसलिए अपने खेमे में पहुंचकर उसने अपने अफगान साथियों से अपनी आशंका प्रकट की कि बाबर की कुदृष्टि मेरे ऊपर है, इसलिए मेरा यहां रहना खतरे से खाली नहीं है। वह तुरंत घोड़े पर सवार होकर भाग निकला। बाबर को कुछ दिनों बाद शेरखान के भाग जाने का समाचार मिला। बाबर ने अपने दरबारियों की भर्त्सना की और कहा, ''तुम लोगों ने उसे भाग जाने दिया। मेरी आशंका सही निकली।'' शेरखान ने अपने परगने पर पहुंचकर बाबर के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उसने यह बहाना किया कि मेरे परगनों पर मेरे दुश्मनों की कुदृष्टि है। इसकी खबर पाकर मैं एकाएक चला आया। अब भी मैं सम्राट का सेवक हूं और उनकी सेवा के लिए सदैव तत्पर हूं।

शेरखान बिहार के शासक सुलतान मुहम्मद के दरबार में चला गया। सुलतान मुहम्मद ने इससे बहुत प्रसन्नता प्रकट की। उसने शेरखान को अपने नाबालिग बेटे का अभिभावक नियुक्त किया। उसने अपना यह नया काम बड़ी योग्यता से किया। कुछ दिन बाद सुलतान मुहम्मद की मृत्यु हो गई। सुलतान मुहम्मद की एक रखैल स्त्री दूदी का पुत्र जलाल खान और शेरखान का शिष्य बिहार का शासक बना। दूदी की मृत्यु के बाद शेरखान ने जलाल खान के प्रतिनिधि के रूप में बिहार के शासन का संचालन प्रायः सन 1529 ईसवी के अंतिम चरण में किया। दूदी के

1. यह घटना किंवदंती के रूप में प्रचलित है, इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मालूम पड़ता।

जीवनकाल में भी बिहार और आसपास के क्षेत्रों का शासन-संचालन दूदी की ओर से शेरखान किया करता था। इसी बीच हाजीपुर के शासक मखदूम आलम से शेरखान की मित्रता हो गई। मखदूम आलम बंगाल और गौड़ के राजा के दरबार में एक सरदार था। कुछ समय बाद मखदूम आलम से यह राजा नाराज हो गया। क्योंकि इसने राजा की इस योजना का विरोध किया कि बिहार को अफगानों से छीन लिया जाए। बंगाल के शासक ने मखदूम आलम के विरोध की परवाह किए बिना अपने सेनापति कुतुब खान को एक विशाल सेना देकर बिहार पर आक्रमण के लिए भेज दिया। इधर शेरखान ने कोशिश की कि बिहार और बंगाल के बीच युद्ध न हो। कुतुब खान ने शेरखान की यह बात नहीं मानी। इसपर शेरखान ने भी युद्ध की तैयारी पूरी कर ली। उसने अफगान सरदारों से कहा कि पश्चिम से मुगल और पूर्व से बंगाल के शासक हमें नष्ट करना चाहते हैं। तुम लोग अपनी वीरता और शक्ति के बल से ही अपनी रक्षा कर सकते हो। अफगान सैनिकों ने दृढ़तापूर्वक शेरखान का साथ देने की प्रतिज्ञा की। लगभग सन 1532 ईसवी में इनकी सहायता से शेरखान ने एक भीषण युद्ध में शत्रु को पराजित कर दिया। इस युद्ध में इस्माइल खान ने शेरखान की बड़ी मदद की थी और शेरखान ने प्रसन्न होकर उसे शुजाअत खान की उपाधि दी। युद्ध में लूटकर प्राप्त किए गए माल से शेरखान बड़ा संपत्तिवान बन गया। उसने इसमें से कोई हिस्सा लोहानियों को नहीं दिया।

इससे लोहानियों में क्रोध उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक बात थी। यह क्रोध अंदर अंदर सुलगता रहा और इस बीच अन्यत्र घटनाचक्र तीव्र गति से चल रहा था। बंगाल के राजा को यह शक बना रहा कि मखदूम आलम ने शेरखान की सहायता की थी क्योंकि उसने उसके ऊपर हमला करने से मना तो किया था और साथ ही सेनापति कुतुब खान की भी कोई सहायता न की थी। इस शक के कारण उसने (बंगाल के राजा ने) मखदूम आलम पर हमला कर दिया। शेरखान लोहानियों के विद्रोह के कारण मखदूम आलम की सहायता के लिए नहीं जा सका। उसने मखदूम आलम की सहायता के लिए अपने मियां हसनू को एक सेना देकर भेज दिया। मखदूम आलम ने शेरखान को लिखा कि मैं युद्ध में लगा हूं। अपनी संपत्ति तुम्हारे पास भेज रहा हूं। यदि मैं विजयी हुआ तो संपत्ति वापस ले लूंगा और यदि पराजित हुआ तो यह तुम्हारी ही रहेगी। शत्रु के हाथ में पड़ने के बजाय तुम्हारे हाथों में इसका बना रहना श्रेयस्कर है। मखदूम लड़ाई में खेत रहा। मियां हसनू लौट आए। मखदूम की संपत्ति भी शेरखान की हो गई।

लोहानी इसे देखकर जल-भुन गए। उन्होंने शेरखान को मार डालने के षड्यंत्र

रचे। कहते हैं कि जलाल खान जो खुद लोहानी था, इस षड्यंत्र में शामिल था। किंतु चूंकि वह शेरखान का स्वामी था और शेरखान ने उसे लोहानियों के षड्यंत्र का हाल बतलाकर उनसे सावधान रहने की चेतावनी दी थी और अपनी रक्षा करने की प्रार्थना की थी, इसलिए वह (जलाल खान) ऊपर ऊपर उसकी मदद करने का दिखावटी स्वांग रचता था। शेरखान भी इस परिस्थिति से परिचित था। इसलिए एक ओर उसने लोहानियों में आपस में फूट पैदा करने और दूसरी ओर लोहानियों और जलाल खान में मतभेद उत्पन्न करने की सफल कूटनीतिक चाल चली। इसमें उसे सफलता मिली। यह सफलता इतनी बड़ी थी कि जलाल खान भी शेरखान से भयभीत रहने लगा।

उसने (जलाल खान ने) शेरखान से कहा—''मेरे प्रति तुम्हारी स्वामिभक्ति के कारण लोहानी तुमसे दुश्मनी रखते हैं। खुदा उन्हें जरूर सजा देगा। तुम बिहार में रहकर यहां का शासन देखो। मैं स्वयं सेना लेकर बंगाल के शासक के विरुद्ध आक्रमण करने जा रहा हूं।'' शेरखान जलाल खान से छुट्टी लेकर सहसराम अपने परगनों पर पहुंचा ही था कि उसे सूचना मिली कि जलाल खान बिहार से भागकर बंगाल के शासक की शरण में जा पहुंचा है। उसने यह भी सुना कि बंगाल के शासक ने जलाल खान का स्वागत करते हुए कुतुबशाह के पुत्र इब्राहिम की अध्यक्षता में एक सेना भी उसकी सहायता के लिए तैनात कर दी है।

शेरखान यह समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने न केवल समूचे बिहार पर राज्य करने का बल्कि बंगाल पर हमला करने का भी सपना देखा। इतना ही नहीं उसने उसी समय से मुगलों को हिंदुस्तान से निकाल बाहर करने का भी संकल्प किया। इस संबंध में एक दिलचस्प कहानी यह है कि शेरखान प्रायः रात में बाजारों में घूमा करता था और सोए हुए गरीब दरवेशों के सिरहाने वस्त्र और धन रख दिया करता था। एक रात जब वह एक दरवेश के सिरहाने कुछ रख रहा था तब वह दरवेश अचानक बोल उठा—''भगवान की कृपा देखो कि उसने दिल्ली के सम्राट को हमारी सहायता के लिए भेजा है।'' शेरखान ने इस कथन को दैवी वाक्य माना और उसे अपने लिए प्रेरणा और आदेश मानने लगा। उसी दिन से वह दिल्ली का सम्राट बनने का सपना देखने लगा।

अब शेरखान अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने लगा। उसने अफगानों को मनचाहा वेतन और इनाम देकर सेना में भर्ती किया। मजबूत सेना बन जाने के बाद उसने बंगाल के राजा पर हमला करने के लिए बिहार से प्रस्थान किया। उसने बिहार की सीमा पर पहुंचकर मिट्टी और पत्थर की दीवार खड़ी करके किलेबंदी कर ली।

बंगाल के शासक ने भी इब्राहिम खान के नेतृत्व में बिहार पर कब्जा करने के लिए सेना भेजी। इस सेना में बहुसंख्यक सैनिक, हाथी, मजबूत तोपखाने वगैरह थे। बंगाली सेना के सेनापति को इस पर गर्व था। उसने शेरखान की शक्ति की कुछ भी परवाह नहीं की। शेरखान अपने किले की आड़ से रोज बंगाली सेना पर हमला करता था और इब्राहिम की सेना मजबूत होते हुए भी कुछ नहीं कर पाती थी।

इस युद्ध में जो शेरखान के जीवन का पहला बड़ा संग्राम कहा जाता है, शेरखान ने अद्‌भुत युद्ध-कौशल और प्रतिभा का प्रदर्शन किया। उसने किले के पीछे बड़ी सेना तैयार रखी और थोड़े घुड़सवार सैनिकों को आगे बढ़ने दिया। बंगाल का सेनापति धोखे में आ गया। उसने इस टुकड़ी को कुल सेना समझकर उसपर जोरदार हमला बोल दिया। शरेखान की इस दिखावटी सेना ने पीठ दिखाकर भागने का स्वांग किया। जब बंगाल की सेना इसे खदेड़ती हुई किले के पास पहुंच गई तभी शेरखान के अधिकांश सैनिक एकाएक उस पर टूट पड़े। दिखावटी भगोड़े बने हुए घुड़सवार सैनिक भी लौट पड़े और बंगाल के सैनिकों पर भयंकर प्रहार करने लगे। परिणाम वही हुआ जिसकी शेरखान ने आशा की थी। बंगाल के सैनिक इतने अधिक आगे आ गए थे कि उनका अपने तोपखाने से पुनः संपर्क होना कठिन हो गया और अब उनके सामने दो ही मार्ग रह गए। युद्ध से पीठ दिखाकर भाग जाना या लड़ते लड़ते मर जाना। सैनिकों ने पहला काम किया। युद्ध छोड़कर भाग खड़े हुए। उनके सेनापति इब्राहिम ने युद्ध क्षेत्र में ही वीरगति प्राप्त की। यह घटना सन 1533 ईसवी के अंत की है।

इस विजय से शेरखान की शक्ति बहुत बढ़ गई। शत्रु का सारा कोष और युद्ध में काम आनेवाले बड़ी तादाद में हाथी और घोड़े, तोपखाना वगैरह सब कुछ शेरखान के हाथ लग गया। उसे अब भारत सम्राट बनने का स्वप्न साकार होता दिखाई देने लगा। वह अब समस्त बिहार और आस-पास के क्षेत्र का अधिपति बन गया। उसने सबसे पहले यह व्यवस्था की कि शासन कठोर किंतु न्यायपूर्ण हो। वह स्वयं शासन-कार्य देखा करता था। उसके कर्मचारी प्रजा पर अन्याय और अत्याचार नहीं कर पाते थे। उसने सैनिकों को उचित वेतन देने की व्यवस्था की। इस तरह प्रजा और सैनिक दोनों संतुष्ट हुए। यह विजय सूरजगढ़ की विजय के नाम से इतिहास में विख्यात है। इसी के बाद शेरखान की शक्ति और साम्राज्य के विस्तार की कहानी शुरू होती है।

चुनार के किले की विजय शेरखान के प्रारंभिक जीवन की दूसरी बड़ी विजय कही जाती है। उन दिनों चुनार का किला देश के इने-गिने मजबूत किलों में गिना जाता था। यह किला दक्षिणी ओर पूर्वीय प्रांतों पर हमला करने वालों के लिए बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता था। शेरखान की नजर जिस समय इस पर पड़ी उस समय

वह ताज खान नाम के अधिकारी के अधीन था। ताज खान सारंगाखानी सुलतान इब्राहिम लोदी द्वारा नियुक्त था। ताज खान सारंगाखानी के पास राजकोष का एक अंश भी इस दुर्ग में सुरक्षित रखा था। जब बाबर ने इस ओर चढ़ाई की तब ताज खान ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। यद्यपि बाबर ने कुछ दिनों बाद उसे निकालने की बड़ी कोशिश की, तथापि उसे सफलता नहीं मिली। ताज खान अपने पद पर बना रहा। उसकी पत्नी लादमलिका बड़ी सुंदरी थी। वह अत्यंत चतुर और बुद्धिमान स्त्री थी। इस कारण ताज खान का उसकी कठपुतली हो जाना स्वाभाविक था। ताज खान की लादमलिका से कोई संतति नहीं थी। अन्य पत्नियों से बच्चे थे जिनके गुजारे की कोई उचित और निश्चित व्यवस्था नहीं की गई थी। इससे वे पिता से तो नाराज थे ही उससे अधिक लादमलिका से नाराज थे। ताज खान के लड़के उससे घृणा करते थे। ताज खान के बड़े लड़के ने एक दिन तलवार निकाल कर लादमलिका पर हमला कर दिया। उसे मामूली चोट लगी। लेकिन ताज खान को गैर-मामूली क्रोध आ गया। उसने पुत्र पर हथियार उठाया, उसका पीछा किया। बेटे ने बाप पर हाथ छोड़ दिया। बाप घायल होकर मर गया। बेटा भाग खड़ा हुआ।

अब लादमलिका किले की मालिकन हुई। उसके सौतेले लड़के उसके शत्रु थे। किंतु सैनिक अधिक संख्या में उसके सेवक और भक्त थे। इनमें तीन तुर्कमान सरदार मीर अहमद, मीर इसहाक और मीर दाद थे जिन्होंने लादमलिका को स्वामिभक्ति का विश्वास दिलाया और इसकी शपथ ली। मलिका को इनपर पूरा विश्वास हो गया।

उधर शेरखान ने गुप्त संदेश भेजकर इन तीनों भाइयों से बातचीत शुरू कर दी। उसने उनसे कहा कि सम्राट को जब ताज खान की मृत्यु की खबर मिलेगी तब वह लादमलिका और तुम तीनों सरदारों को भी किले से बेदखल कर देगा। यह बात इन भाइयों को उचित जान पड़ी। तीनों भाइयों और शेरखान में यह शर्त तय हुई कि ये लोग उसे किले पर कब्जा दिला देंगे और वह (शेरखान) उनके प्रति अच्छा व्यवहार करता रहेगा। तीनों भाइयों ने लादमलिका के सामने यह सुझाव रखा कि सौतेले लड़कों से तथा सम्राट की कोप-दृष्टि से बचने के लिए यही आवश्यक है कि किला शेरखान के सुपुर्द कर दिया जाए। उन्होंने उसे यह भी सुझाव दिया कि वह शेरखान से विवाह कर ले। लादमलिका को यह प्रस्ताव अच्छा लगा। इसमें उसने हर तरह से अपनी सुरक्षा की बात देखी। उसने केवल एक शर्त यह रखी कि शेरखान को मेरे उस सौतेले लड़के के नाक-कान काट देने पड़ेंगे जिसने मेरे पति और अपने बाप की हत्या की थी। ताज खान के पुत्रों को किसी तरह की खबर मिलने के पहले

ही शेरखान ने चुनार के किले में अपनी बारात पहुंचा दी। विवाह में उसे 150 बहुमूल्य हीरे, सात मन मोती, 150 मन सोना और अन्यान्य अनेक बहुमूल्य आभूषण मिले।[1] थोड़े समय बाद शेरखान ने चुनार के दुर्ग के आस-पास के परगनों पर भी अधिकार कर लिया और थोड़े दिनों बाद उसने नासिर खान की विधवा गोहर हुसैन से भी विवाह कर लिया और 60 मन सोना उससे भी उसे प्राप्त हुआ। उसकी स्थिति अब बहुत मजबूत हो गई। शेरखान की शक्ति निरंतर बढ़ती गई। वह एक बड़े दुर्ग का और अगाध धनराशि का स्वामी हो गया। उसके पास घुड़सवारों तथा पैदल सिपाहियों की विशाल सेना एकत्र हो गई। कुछ दिनों बाद सुलतान सिकंदर लोदी के पुत्र सुलतान महमूद को जिसे राणासांगा, हसन खान मेवाती और दूसरे अफगान सरदारों ने सम्राट घोषित किया था, सीकरी के निकट सम्राट बाबर से युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में आदिल खान का पुत्र हसन खान और हंगीरपुर का राजा एवल अनेक प्रसिद्ध सरदारों सहित खेत रहे और सुलतान महमूद और राणासांगा पराजित होकर चित्तौड़ की ओर भाग गए। कुछ दिन चित्तौड़ में रुकने के बाद सुलतान महमूद पटना की ओर चला आया। यहीं पर आजम खां हुमायूं सानी जो सुलतान महमूद का ससुर था, ईसा खान, उमर खान, इब्राहिम खान जैसे उस समय के भारत प्रसिद्ध अफगान सरदार इकट्ठे होकर सुलतान महमूद से आ मिले। इन सबने आपस में परामर्श करने के बाद संकल्प किया कि मुगलों का विरोध किया जाए। उन लोगों ने सुलतान महमूद को अपना सम्राट घोषित किया। जब शेरखान ने इस प्रसिद्ध अफगान सरदारों के सहयोग से सुलतान महमूद को बिहार में प्रवेश करते देखा तो इसने भी उसके प्रति निष्ठा और भक्ति दिखलाने का विचार किया। उस समय सुलतान महमूद की बड़ी ताकत थी। उससे मुकाबला करने का शेरखान का न तो साहस ही था और न ही शक्ति। अतः इसने भी पटना जाकर सुलतान महमूद के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की। तब तक सुलतान के अफगानी सरदारों ने बिहार प्रांत को आपस में जागीरों में बांट लिया। सुलतान महमूद ने शेरखान को तसल्ली देते हुए कहा, "मैं जौनपुर को जीतने के बाद ही बिहार का राज्य तुम्हें वापस कर दूंगा क्योंकि तुमने इसे बंगाल के शासक को हराकर प्राप्त किया है, तुम कुछ भी फिक्र न करो। जिस तरह सुलतान सिकंदर ने इसे दरया खान को दिया था उसी प्रकार मैं इसे तुम्हें दे दूंगा।[2] शेरखान ने इस आश्वासन का लिखित रूप प्राप्त कर लिया और दरबार से थोड़े दिनों के

1. अब्बास सखानी—पृ. 262

2. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

लिए छुट्टी लेकर अपनी जागीर पर चला गया जहां वह अपनी सैन्य शक्ति सुदृढ़ करने लगा।

सुलतान महमूद ने थोड़े दिन बाद अपनी सेना को सुदृढ़ किया और उसने जौनपुर पर हमला करने के लिए प्रस्थान किया। उसने शेरखान को भी इस अभियान में शामिल होने का आदेश लिखकर भेजा। शेरखान ने जवाब दिया कि मेरी सैनिक तैयारी ज्यों ही पूरी हो जाएगी मैं स्वयं आपकी सहायता के लिए पहुंच जाऊंगा। सुलतान महमूद के सरदारों ने इसे बहानेबाजी समझा। उन्होंने सुलतान से उसकी खूब शिकायत की। सुलतान के एक अफगान सरदार आजम हुमायूं सरवारी ने यह सलाह दी कि सुलतान की सेना को शेरखान के रास्ते से जौनपुर की ओर चलना चाहिए और शेरखान को इस बात का दंड मिलना चाहिए कि उसने हमारे साथ शामिल होने में आनाकानी की। उसने कहा कि शेरखान को हमारा स्वागत करना चाहिए और उसके बाद तभी अपनी सेना को साथ लेकर जौनपुर की ओर बढ़ना चाहिए। यह सलाह सबको पसंद आई। सेना सहसराम की ओर बढ़ी जब यह खबर शेरखान को मिली कि मुझे इन लोगों के साथ जाना ही पड़ेगा तो वह बहुत दुखी हुआ। उसने अपनी विवशता अपने साथियों से प्रकट की और सब लोग सुलतान की सेना के स्वागत में लग गए। उसने इन लोगों के लिए अत्युत्तम प्रकार का भोजन बनवाया और हर-एक सरदार के पद के अनुसार उनके पास खेमों में भिजवाया। इस स्वागत-सत्कार से सुलतान महमूद और उसके सरदार बहुत प्रसन्न हुए।

शेरखान के आग्रह पर सुलतान महमूद कुछ दिनों के लिए सहसराम में रुक गया। इस बीच शेरखान ने अपनी सेना को सुलतान महमूद की सेना के साथ जौनपुर अभियान के लिए तैयार किया। शेरखान और उसके अफगान सरदार सुलतान महमूद के साथ चल पड़े। इस भारी सेना के समीप पहुंचते ही मुगल सेना किले को खाली कर भाग खड़ी हुई। सुलतान महमूद जौनपुर में रुक गया। उसके सरदार और सैनिक आगे बढ़ गए और उन्होंने लखनऊ और उसके आस-पास के क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया।

हुमायूं को अफगानों की इस सफलता का समाचार मिला तो वह तुरंत आगरे से सेना लेकर लखनऊ की ओर चल पड़ा। इसी बीच सुलतान महमूद भी जौनपुर से लखनऊ आ पहुंचा। सन 1537 के लगभग लखनऊ के निकट मुगल और अफगान सेनाओं में युद्ध हुआ। यद्यपि युद्ध के आरंभ का दिन निश्चित नहीं हुआ था, तथापि दोनों सेनाएं मौका पाकर एक-दूसरे पर हमला कर दिया करती थीं। शेरखान ने हुमायूं के पास इस आशय का गुप्त संदेश भेजा कि महमूद मुझे जबरदस्ती यहां ले आया है। युद्ध के दिन मैं अपनी सेना के साथ यहां से चल दूंगा। यह संदेश उसने हिंदूबेग

नामक सरदार की मार्फत भिजवाया था। हिंदूबेग ने हुमायूं से परामर्श करने के बाद शेरखान को यह कहला भेजा कि यदि तुम हमारी तरफ रहोगे तो तुम्हारा ही फायदा होगा। शेरखान ने भीषण युद्ध के समय अफगानों का पक्ष छोड़ दिया। उसकी सेना युद्ध से अलग हो गई। इससे सुलतान महमूद को पराजित होना पड़ा। वह भागकर बिहार चला गया। उसके अधिकांश सरदार लखनऊ युद्ध में मार डाले गए थे। उसके पास धन भी नहीं था। राज्य तो था ही नहीं। इससे सुलतान महमूद को पराजित होना पड़ा। वह भागकर बिहार चला गया। उसके अधिकांश सरदार लखनऊ युद्ध में मार डाले गए थे। उसके बचे-खुचे साथी उसे छोड़कर चले गए थे। सम्राट बनने की उसकी लालसा समाप्त हो गई और वह पटने में साधारण नागरिक की तरह रहने लगा। चार-छह वर्षों बाद उसका देहांत हो गया।

विजयी हुमायूं ने हिंदूबेग की अधीनता में शेरखान से चुनार प्राप्त करने के लिए अपनी सेना भेजी। शेरखान ने चुनार देना अस्वीकार कर दिया। यह समाचार पाकर हुमायूं ने और बड़ी सेना भेजी। शेरखान ने अपने पुत्र जलाल खां और जुलू के पुत्र एक दूसरे जलाल खां को किले की रक्षा का भार सौंप दिया और स्वयं पास के पर्वतों में जाकर छिप गया। किले के युद्ध में जो प्रायः प्रतिदिन होता था, जलाल खां नाम के दोनों बहादुरों ने बड़ी हिम्मत दिखाई।

इस बीच शेरखान आसपास के शासकों से सहायता पाने का प्रयास कर रहा था। तभी उसे यह समाचार मिला कि गुजरात के शासक बहादुरशाह ने मांडू पर अपना अधिकार कर लिया है और युद्ध की घोषणा कर दिल्ली की ओर बढ़ने वाला है। शेरखान को यह समझने में देर न लगी कि हुमायूं के लिए अब चुनार का किला बहुत छोटी चीज हो गई है। अधिक दिन तक उसकी सेना यहां नहीं बनी रह सकती। उसने हुमायूं से प्रार्थना की कि मुझे चुनार का किला दे दिया जाए। उसने लखनऊ के युद्ध में अपने सहयोग का स्मरण दिलाया। उसने यह भी कहा कि दिल्ली की रक्षा करना आपके लिए बहुत जरूरी है। मेरा पुत्र कुतुब खान आपकी सेवा में रहेगा। यदि मुझसे कोई गलती हो जाए तो आप उसे मनचाहा दंड दे सकते हैं। हुमायूं ने यह प्रस्ताव इस शर्त पर मान लिया कि शेरखान कुतुब खान के बदले अपने दूसरे पुत्र जलाल खान को मुगल सेना के साथ भेजे। शेरखान ने यह बहाना किया कि जलाल खान मेरे दूसरे शत्रुओं के दमन के लिए लड़ रहा है। हुमायूं ने यह बात मान ली और शेरखान को चुनार का किला देकर कुतुब खान को अपने साथ ले जाना स्वीकार किया। शेरखान ने अपने प्रसिद्ध दरबारी इसारंग और पुत्र कुतुब खान को हुमायूं के साथ भेज दिया। हुमायूं जौनपुर से आगे चला गया और गुजरात के

बहादुरशाह का दमन करने में लग गया। मौका पाकर शेरखान ने बिहार के अपने सभी शत्रुओं को नष्ट कर डाला। उसने अफगानों को जो इस बीच गरीब और फकीर बन गए थे, अपनी सेना में भरती किया। जिन्होंने इंकार किया, उन्हें मार डाला। शेरखान को इनका खूब सहयोग मिला और उसने इस खुशी में हजरत अली की उपाधि धारण कर ली। इसी समय शेरखान का संपर्क मियां मुहम्मद नामक एक चतुर सरदार से हुआ। इस मियां मुहम्मद को काला पहाड़ भी कहा जाता है। मियां मुहम्मद काला पहाड़ और उसकी एक दासी के संसर्ग से उत्पन्न बालक मियां मियांमू बड़ा बुद्धिमान युवक था।

मियां मुहम्मद काला पहाड़ की मृत्यु के बाद सुलतान इब्राहीम ने शेख मुस्तफा को उसका उत्तराधिकारी घोषित किया। उसकी पत्नी का नाम था फाथमलिका। यह स्त्री भी बड़ी बुद्धिमान थी। शेख मुस्तफा की मृत्यु के बाद फाथमलिका ने अपने देवर मियां नयाजीद को शासन संचालन की शिक्षा दी। उसे जागीरों के प्रबंध का उत्तरदायित्व देकर उसने उससे कहा कि यदि तुम सैनिकों की भरती की व्यवस्था कर सको तो मैं तुम्हें इसके लिए धन दे सकती हूं। मियां नयाजीद ने इस अवसर का लाभ उठाकर सेना संगठित की और कई स्थानों पर मुगलों का सामना कर उन्हें पराजित किया। उसकी ख्याति फैलने लगी। किंतु अफगानों और मुगलों की सेना की जो लड़ाई लखनऊ के निकट हुई थी उसमें उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के समय फाथमलिका बिहार में थी। उसने अपनी संपत्ति की रक्षा के लिए बिहार के राजा की शरण लेने का विचार किया, किंतु जब उसे मालूम हुआ कि नयाजीद की मृत्यु हो गई है और सुलतान महमूद पराजित हो गया है तब वह सतर्क हो गई। इस स्त्री की असहायावस्था का समाचार पाकर शेरखान ने उसकी संपत्ति हस्तगत करने की योजना बनाई। उसने उसे पत्र लिखा कि आपको अफगानों की इज्जत का ख्याल करना चाहिए, हिंदू राजाओं के चंगुल में नहीं फंसना चाहिए और मेरे क्षेत्र में आकर सुरक्षित रहना चाहिए। फाथमलिका शेरखान से यह शपथ कर लेने के बाद कि वह उसके साथ स्थायी रूप से संबंध बनाए रखेगा, उसकी शरण में आकर रहने लगी।

बंगाल के शासक नसीबशाह की मृत्यु के बाद वहां के अमीरों ने सुलतान महमूद को वहां का शासक घोषित किया, किंतु वह इतना अयोग्य था कि बंगाल में अशांति फैल गई। शेरखान ने इस परिस्थिति का फायदा उठाने का निश्चय किया। उसने फाथमलिका से 300 मन सोना लेकर एक बड़ी सेना संगठित की। उसने फाथमलिका को इसके बदले में दो परगने और कुछ नकद रुपए दिए। इस तरह

सेना लेकर उसने बंगाल की ओर बढ़कर सीकरी गली (अर्थात गढ़ी) के इस ओर तक बंगाल के सारे प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया।

हुमायूं जब गुजरात से लौट कर आगरे आया तब खानखाना यूसुफ खैल ने (जिसने बाबर को काबुल से आकर भारत पर हमला करने का निमंत्रण दिया था) उससे (हुमायूं से) कहा कि अब शेरखान की ओर ध्यान देना चाहिए। उससे सावधान रहने की जरूरत है। हुमायूं ने हिंदूबेग को जौनपुर भेजते हुए यह आदेश दिया कि शेरखान की गतिविधि की खबर देते रहना। इसका समाचार पाकर शेरखान ने हिंदूबेग के पास बहुमूल्य उपहार भेजकर यह संदेश भेजा कि मैंने सम्राट के इलाकों पर कोई अतिक्रमण नहीं किया है। अतः आप सम्राट को बिहार-बंगाल की ओर बढ़ने से रोक रखें। उन्हें यह विश्वास दिला दें कि मैं (शेरखान) उनका सेवक और आज्ञाकारी सरदार हूं। इसका परिणाम अच्छा हुआ। हिंदूबेग ने हुमायूं को शेरखान की निष्ठा का विश्वास दिलाया और बिहार और बंगाल की ओर से उन्हें निश्चिंत कर दिया।

इधर शेरखान ने अपने पुत्र जलाल खान, प्रमुख सरदार खवास खान और अन्य सरदारों के साथ एक बड़ी सेना बंगाल और गौड़ नगर पर अधिकार करने के लिए भेजी। बंगाल का शासक सुलतान महमूद भयभीत होकर गौड़ के दुर्ग में चला गया। शेरखान की सेना ने दुर्ग को घेर लिया और उभय पक्ष के सैनिकों में मुठभेड़ होने लगी।

उधर हुमायूं की बिहार और उसके आगे बंगाल की ओर प्रगति जारी थी। चुनार के निकट पहुंचने पर उसे यह समाचार मिला कि गौड़ का किला जलाल खान के घेरे में है, उसके सामने यह प्रश्न आया कि पहले चुनार के किले पर कब्जा किया जाए अथवा बंगाल की राजधानी गौड़ की ओर बढ़ा जाए। उसके युवक सरदारों की सलाह थी कि पहले चुनार को जीतना चाहिए। वृद्ध सरदार खानखाना यूसुफ खैल की सलाह थी कि पहले गौड़ के दुर्ग को जीतकर उसके कोष को हस्तगत कर लेना चाहिए, क्योंकि उसके बाद चुनार को जीतना आसान हो जाएगा। किंतु हुमायूं ने उत्तर दिया कि मैं स्वयं युवक हूं, अतः युवक सरदारों की सलाह ही मुझे स्वीकार है। इसपर खानखाना ने यही आशंका प्रकट की कि जब तक चुनार की लड़ाई चलती रहेगी तब तक शेरखान का पुत्र जलाल खान गौड़ के किले में घुसकर उसपर अधिकार कर लेगा।

शेरखान ने चुनार के दुर्ग की रक्षा का काम अपने दो सरदारों के हाथों में दे दिया था और वह स्वयं जंगलों में भटक रहा था। अब उसे सुरक्षित शरणस्थल की आवश्यकता आ पड़ी। उसने बड़ी कठिनाई से एक तरफ कई मन सोने के उपहार

और दूसरी तरफ शत्रु हुमायूं से मिल जाने की धमकी देकर अपने पुराने मित्र चूड़ामणि नामक रोहतास के राजा के नायब के प्रभाव से रोहतास के किले में शरण ली। यहां उसे समाचार मिला कि चुनार के दुर्ग पर हुमायूं का कब्जा और उधर गौड़ की खाई में डूब जाने से उसके (शेरखान के) प्रमुख सरदार खवास खान की मृत्यु हो गई। उसने गौड़ के दुर्ग पर हमला तेज करने के लिए एक दूसरे सरदार मुसाहिब खान को खान की उपाधि देकर गौड़ की ओर रवाना किया। यह मुसाहिब खान पहले वाले खवास खान का छोटा भाई था।

6. पहली बार 'राजा' की उपाधि

तारीखे-शेरशाही अथवा तोहफते अकबरशाही नामक ग्रंथ के मूल लेखक अब्बास खान सरवानी की पुस्तक की मूल पांडुलिपि के अनुसार शेरशाह को पहली बार 'राजा' इस खवास खान ने कहा है। उसने गौड़ पहुंचकर जलाल खान से कहा कि "राजा शेरशाह का आदेश है कि गौड़ के किले पर शीघ्र कब्जा कर लेना चाहिए क्योंकि हुमायूं मुगल सेना लेकर इसी ओर आ रहा है।" खवास खान ने जलाल खान, सुजाअत खान और अन्य अफगान सरदारों को तीन तरफ से किले पर हमला करने के लिए प्रोत्साहित और प्रेरित किया। इन तीनों ने अनिच्छा से इसकी बात मान ली क्योंकि इन्हें इसका विश्वास हो गया था कि गौड़ का किला शेरशाह को मिलेगा ही, इसलिए इसका श्रेय प्राप्त करने में हमें भी हाथ बंटाना चाहिए। इस युद्ध में खवास खान ने विशेष वीरता का परिचय दिया। इसके बाद से वह शेरखान की ओर से उसके युद्धों में विजय प्राप्त करता रहा। शेरखान की सेना में इसकी टक्कर का कोई दूसरा अफगान सरदार या सेनापति नहीं था।

जलाल खान ने शेरखान को सूचना दी कि गौड़ के किले पर हमारी विजय हो गई है और उसका श्रेय खवास खान को है। इस समाचार से शेरखान को बड़ी प्रसन्नता हुई।

गौड़ का किला सन 1537 के नवंबर से घेरे में था। मार्च सन 1537 से उस पर हमले होने लगे और किले के अंदर के लोगों को कष्ट का अनुभव होने लगा। अफगान इस किले में छह अप्रैल सन 1538 में प्रविष्ट हुए। मध्यकालीन बंगाल का स्वतंत्र राज्य समाप्त हुआ। सुलतान महमूद ने किला खाली कर दिया और वह उत्तर बिहार की ओर भाग खड़ा हुआ। सुलतान महमूद का पीछा किया गया। उसे युद्ध के लिए ललकारा गया, विवश किया गया और घायल भी किया गया, किंतु वह भाग जाने में सफल हुआ। वह नाव से भागकर हाजीपुर (पटना के सामने) चला गया। उसका इरादा हुमायूं के दरबार में हाजिर होने का था।

शेरखान ने देखा कि हुमायूं चुनार का दुर्ग जीत लेने के बाद पूरब की ओर बढ़ना चाहता है तब उसने उसके पास स्वामिभक्ति का संदेश भेजकर उसे आश्वासन दिया कि यदि आप बंगाल की विजय का विचार छोड़ दें तो मैं बिहार आपको सौंप दूंगा और सम्राट को 10 लाख रुपया प्रतिवर्ष राजकर के रूप में भेज दिया करूंगा। इस आश्वासन से संतुष्ट होकर हुमायूं आगरे लौट गया और शेरखान निश्चिंत हो गया, किंतु जब इस घटना के तीन दिन बाद सुलतान महमूद ने हुमायूं के दरबार में उपस्थित होकर कहा कि गौड़ का किला मैंने छोड़ा दिया है, किंतु शेष समूचा बंगाल मेरे पास है। अब शेरखान का विश्वास कदापि न करें। आप उसपर हमले के लिए कूच कर दें। इस उद्‌बोधन से हुमायूं की नीयत बदल गई। उसने बर्री बरलास और दूसरे सेनापतियों के साथ खानखाना यूसुफ खैल को पर्याप्त सैनिक देकर बहरकुंडा की पहाड़ियों की ओर शेरखान पर हमला करने के लिए भेज दिया। उसने मिर्जा हिंदल को गंगा पारकर हाजीपुर जाने का आदेश दिया और स्वयं बंगाल की ओर चल पड़ा।

जब शेरखान को मालूम हुआ कि हुमायूं की नीयत बदल गई है और वह सभी शर्तों को तोड़कर बंगाल की ओर रवाना हो गया है तो उसे बड़ा दुख हुआ। उसने हुमायूं के किसी वचन पर कोई विश्वास न करने का निश्चय किया। उसके पास जो दूत आया हुआ था, उससे उसने कहा—"मैंने हमेशा हुमायूं के प्रति निष्ठा और भक्ति निभाई है। मैंने न तो उसके विरुद्ध कोई अपराध किया है और न उसकी राज्य की सीमाओं के अंदर अपने सैनिक भेजे हैं। जब मैंने लोहानियों से बिहार का राज्य प्राप्त किया था और बंगाल के राजा ने मुझसे इसे छीनने की योजना बनाई थी, तब मैंने उससे (बंगाल के शासक से) नम्रतापूर्वक प्रार्थना की थी कि वह बिहार से मुझे वंचित न करें और मुझे बिहार में शांति के साथ राज्य करने दें। किंतु उसे अपनी सेना की शक्ति का गर्व था। अतः उसने मेरी प्रार्थना को ठुकरा दिया और वह मेरा नुकसान करने लगा। इसी कारण सर्वशक्तिमान ईश्वर ने मुझे सफलता प्रदान की और उस लोभी सुलतान के हाथ से बंगाल को भी छीन लिया। आज सम्राट हुमायूं ने मेरी सेवाओं को पूर्णरूप से भुला दिया। उसने मेरी शक्तिशाली विशाल सेना की कोई परवाह नहीं की और मुझे क्षति पहुंचाने के लिए उसने बंगाल की ओर प्रस्थान किया है। उसने मेरे हितों की अवहेलना करना और मेरे शत्रुओं को प्रसन्न करना उचित समझा है। यह उसकी भूल है; अन्याय और अनीति भी है क्योंकि मेरी विशाल अफगान सेना को शत्रु बनाकर वह सफलता से शासन नहीं कर सकता। उसका यह सोचना भी भूल है कि वह हमारे शत्रुओं को सहयोग देकर हमारी अफगान

सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। सम्राट ने हमारी सेवाओं के लिए हमें पुरस्कार देने के बदले हमारा नाश करने का विचार किया है और हमारे साथ हुई सभी संधियों को तोड़ दिया है। इसलिए अब मैं अपने अफगानों से यह कहने में असमर्थ हूं कि वे सम्राट के विरुद्ध विद्रोह न करें। मुगलों का यह ख्याल रहा है कि भारत में अफगानों की आपसी लड़ाई और ईर्ष्या तथा वैमनस्य के कारण ही उन्हें भारत को विजय करने का मौका मिला है। किंतु आज यह स्थिति नहीं है। मुगल बादशाह ने अफगानों के साथ जो संधि-विच्छेद किया है उसका एक परिणाम तो अच्छा ही हुआ कि अफगानों में एकता स्थापित हो गई। अब युद्ध-स्थल में ही इसका निर्णय होगा कि मुगलों और अफगानों में किसकी सेना अधिक मजबूत है।"

मुगल सम्राट के दूत से ये सब बातें कहकर शेरखान ने उसे अनेक उपहार दिए और विदा कर दिया। शेरखान को यह बात अंतिम रूप से अच्छी तरह मालूम हो गई कि अब मुगल सम्राट से उसे लड़ना ही पड़ेगा और इसके लिए सभी उपाय काम में लाने पड़ेंगे। इस विचार से उसने कूटनीति, जासूसी और रणनीति तीनों में अद्‌भुत सामंजस्य स्थापित किया। उसने अपने अधिकांश सैनिक रोहतास के दुर्ग में भेज दिए और खुद कुछ घुड़सवारों के साथ गुप्त रूप से पहाड़ी मार्ग से होता हुआ गौड़ की ओर चल पड़ा, वह कुछ समय तक रास्ते में गुप्त स्थान पर रुका रहा। इन स्थानों से वह गुप्तचर भेजकर सम्राट हुमायूं और उसकी सेना की गतिविधि और सूचना का समाचार प्राप्त करता रहा। उधर हुमायूं के गुप्तचर भी अपना काम करते रहे। इनको भी पता चल गया कि शेरखान पहाड़ियों की ओर चला गया है, इसलिए हुमायूं की सेना ने शेरखान का पीछा करने का विचार छोड़ दिया। खानखाना यूसुफ खैल और बर्री बरसाल जो शेरखान का पीछा करने के लिए भेजे गए थे, मुनीर शेख याहिया के परगने में रुक गए। इसका कारण यह था कि उन्हें किसी स्थान पर सूचना मिली कि गौड़ का शासक सुलतान महमूद वहां तक आ पहुंचा है। बर्री बरसाल ने कुछ आगे बढ़कर उसका स्वागत किया, वे सुलतान महमूद के पड़ाव तक अभी पहुंच भी न पाए थे कि सम्राट हुमायूं भी स्वयं वहां आ पहुंचा। सुलतान महमूद हुमायूं के सामने लाया गया, हुमायूं ने उसका उचित आदर और स्वागत नहीं किया। उसने उसके साथ साधारण उदारता का भी परिचय नहीं दिया, इससे सुलतान महमूद को बड़ी मार्मिक वेदना हुई। मानसिक चिंता और अपमान से कुछ ही दिनों में उसका देहांत हो गया। सम्राट ने उसकी सेना को अपने अधीन कर लिया।

शेरखान सैन्य संचालन और रण-कौशल में हुमायूं से किस प्रकार अधिक चतुर था, इसका प्रमाण पटना की एक घटना से मिलता है। जिस स्थान पर सुलतान महमूद

और हुमायूं की मुलाकात हुई थी, वह हुमायूं की सेना का पड़ाव था। हुमायूं ने उस शाही पड़ाव से प्रायः पंद्रह मील अर्थात तेईस-चौबीस किलोमीटर आगे कई बड़े सरदारों के साथ बीस हजार घुड़सवारों की सेना भेज थी। उधर शेरखान अपने कुछ घुड़सवारों के साथ गुप्तरूप से मुगलों का विरोध करने के लिए चल पड़ा। जब हुमायूं पटना पहुंचा तब उसकी अग्रगामी सेना के कुछ संतरियों ने एक गांव के समीप कुछ अपरिचित घुड़सवारों को देखा। उन्होंने एक ग्रामवासी से पूछा कि वे घुड़सवार कौन हैं। ग्रामवासी ने उन्हें बताया कि ये घुड़सवार शेरखान की सेना के अंग हैं। गांव वालों ने यह भी बताया कि शेरखान कुछ घुड़सवारों के साथ यहां पड़ाव डाले हुए है। ऐसा सुनकर मुगल सिपाही घबरा गए और उन्होंने शेरखान का नाम सुनते ही वहां से तुरंत लौट पड़ना उचित समझा। उन्होंने इतना भी नहीं देखा कि शत्रु-सेना की शक्ति कितनी है। उन लोगों ने अपने पड़ाव में जाकर अपने सेनापति को बतलाया कि शेरखान उस गांव में अपनी सेना के साथ पड़ाव डाले पड़ा है। उस सेनानायक ने एक तरफ तो मुगल सम्राट से यह अनुमति मांगने के लिए सिपाही भेजे कि शेरखान के पड़ाव पर हमला कर दिया जाए और दूसरी ओर उसने शेरखान की सेना की वास्तविक संख्या और शक्ति का पता लगाने के लिए अपने गुप्तचर भेजे। जब तक ये गुप्तचर शेरखान की सेना के पड़ाव के पास पहुंचे तब तक शेरखान अपने अश्वारोही सैनिकों को लेकर वहां से चला गया। गुप्तचरों ने जब यह खबर लौटकर अपने पड़ाव पर अपने सेनापति को दी तब तक अंधेरा हो चुका था और इसलिए शेरखान के घुड़सवारों का पीछा करने का निश्चय नहीं किया जा सका।

इसी प्रकार जब शेरखान ने गरी के दर्रे को पार किया तब उसने सैफखान अचाखेल सरवानी को अपने परिवार के साथ रोहतास के दुर्ग की ओर जाते हुए देखा। शेरखान ने उसे तत्काल वह मार्ग छोड़ देने की सलाह दी, किंतु मुगल सेना बहुत निकट होने के कारण दूसरा पथ पकड़ना संभव नहीं था। मुगल सेना के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद उसने शेरखान से कहा कि "आपके पास बहुत कम सैनिक हैं और मुगल सेना आपके बहुत निकट है। इसलिए आप मेरे परिवार के लोगों को लेकर आगे बढ़ जाइए। मैं आपकी अफगानी सेना को लेकर दर्रे पर डटा रहूंगा और मुगलों को दर्रे से पार निकलने के लिए मरते दम तक रोकता रहूंगा। इस तरह आप मुगल सेना से बहुत आगे निकल जाएंगे।" पहले तो शेरखान ने इस प्रस्ताव को मानने से इनकार किया। किंतु जब सैफखान ने उससे यह कहा कि आप हमारे परिवार के मुखिया हैं, आपकी रक्षा के लिए मुझे आत्मबलिदान करना चाहिए और यह मेरे लिए गर्व की बात होगी; तब वह राजी हो गया और मुगलों की सेना

के भय से मुक्त होकर तेजी से अपने मार्ग पर बढ़ने लगा।

सैफखान की स्वामिभक्ति

दूसरे दिन सूर्योदय के बाद सैफखान ने अपने साथियों को स्नानादि से निवृत्त होकर मृत्यु के लिए तैयार होने का आदेश दिया। उसने उन्हें संबोधित करते हुए कहा—"यदि आप अपना बलिदान करने के लिए सन्नद्ध हो ही गए हैं तो हम भी आपकी सेवा में हजारों सैनिक न्यौछावर करने को तैयार हैं। अब बात करने का समय नहीं है। समय आने पर आप देखेंगे कि हम अपने कर्तव्य का पालन करने में कभी पीछे नहीं रहेंगे।" इस उद्‌बोधन को सुनने के बाद उसके अधीनस्थ सैनिकों ने शस्त्र धारण किए और उस दर्रे के चारों ओर छा गए। उन्होंने वहां अपनी खूब मजबूत मोर्चेबंदी कर ली। मुगल सेना के निकट आते ही सैफखान के सैनिकों ने उसके ऊपर हमला शुरू कर दिया। मुगलों का दर्रे में घुसने का प्रयत्न विफल रहा। इनकी बहादुरी देखकर मुगलों को भी दंग रह जाना पड़ा। इन थोड़े से अफगान सैनिकों ने तीसरे पहर तक डटकर मुकाबला किया, परंतु अंत में अधिकांश अफगान सैनिक खेत रहे और स्वयं सैफखान भी तीन भारी चोटों से मूर्छित होकर गिर पड़ा। उसे मुगलों ने जीवित बंदी के रूप में मुयीद बंग के पास भेज दिया जिसने उसे हुमायूं के सामने उपस्थित किया। हुमायूं ने भी उसके शौर्य और साहस की प्रशंसा करते हुए कहा—"एक सच्चे सैनिक का यही परम कर्तव्य है कि अपने स्वामी की सेवा में प्राणों तक की बाजी लगा दे। मैं सैफखान की वीरता से प्रसन्न हूं। इसलिए उसे मुक्त करता हूं। मेरी आज्ञा है कि उसे स्वेच्छानुसार जाने दिया जाए।" सैफखान ने हुमायूं से कहा कि "मेरा परिवार इस समय शेरखान के पास है। इसलिए मैं वहीं जाना चाहता हूं। हुमायूं ने इसपर कोई आपत्ति नहीं की। वह अपनी बात पर कायम रहा और उसने कहा कि "मैंने खुशी से तुम्हें जीवन-दान दिया है। अब तुम जहां चाहो जा सकते हो।" सैफखान शेरखान के पास लौट गया। यह युद्ध संभवतः सन 1537 के बाद और सन 1538 के मध्यकाल में हुआ था।

उधर जब शेरखान नियाजी के पास पहुंचा तब उसने उसे बताया कि हुमायूं की सेना के समीप होने के कारण वह शुजाअत खान, सैफखान के परिवार को गरी के दुर्ग में पहुंचा दे। शेरखान खुद एक तेज नाव से जलमार्ग से गौड़ की ओर चल पड़ा। वहां पहुंचते ही उसने अपने पुत्र जलाल खान और दूसरे सरदारों को आदेश दिया कि तुम लोग जाकर गरी के दुर्ग पर कब्जा कर लो और हुमायूं को वहां तब तक रोकने की कोशिश करो, जब तक मैं गौड़ से प्राप्त कोष को रोहतास में सुरक्षित

न कर लूं। जब जलाल खान अपने सैनिकों सहित गरी में पहुंचा तब उसे समाचार मिला कि मुगलों की अग्रगामी सेना नजदीक आ गई है। उसने हुमायूं की इस सैनिक टुकड़ी पर तुरंत हमला करने का विचार किया, किंतु उसके सरदारों ने उसे शेरखान की योजना का स्मरण दिलाकर कहा कि आमने-सामने के युद्ध से बचना चाहिए और दर्रे में मुगलों को प्रवेश करने से रोकना चाहिए। जलाल खान ने इस सलाह की परवाह न की। वह एक हजार घुड़सवारों को गरी की रक्षा के लिए पीछे छोड़कर छह हजार सैनिकों को साथ लेकर मुगलों पर हमला कर बैठा। भयंकर युद्ध हुआ और जलाल खान ने अपने शत्रुओं को खदेड़ दिया। इस युद्ध में मुगलों के प्रसिद्ध सरदार मुबारक फर्मूली और अब्दुल फाथलंगा वगैरह खेत रहे।

इस विजय के बाद जलाल खान ने गरी (सिलीगली, सिलीगुड़ी, वर्तमान आसाम का एक जिला) लौटकर इसकी पुनः मोर्चेबंदी शुरू की। उसी रात भयंकर वर्षा हुई और दर्रे से होकर निकलने का मार्ग दुर्गम हो गया। इस प्रकार वर्षा ऋतु का आरंभ हो गया और हुमायूं को लगभग एक मास तक यहीं रुक जाना पड़ा। शेरखान ने हुमायूं की इस विवशता का लाभ उठाया और गौड़ के समूचे कोष को झकंडा के मार्ग से ले जाकर रोहतास में सुरक्षित कर लिया। उसने अब रोहतास से जलाल खान को खबर भेजी कि तुम गरी छोड़कर अपने सैनिकों सहित रोहतास चले आओ। जलाल खान ने वैसा ही किया। हुमायूं को जब इसकी खबर लगी तब वह कुछ निश्चिंत हो गया। उसने अपने कुछ सैनिक मिर्जा हिंदल के नेतृत्व में आगरे लौटा दिए और खुद बंगाल की राजधानी गौड़ की ओर चला गया। गौड़ पहुंचकर वह मौज और विलासिता में डूब गया। उसने तीन महीने तक न तो दरबार किया और न किसी को भेंट करने का अवसर दिया। (945 हि. सन 1538-39 ई.)

शेरखान ने इस स्थिति का फायदा उठाया। उसने समय का सदुपयोग किया। वह बनारस की ओर बढ़ गया। वहां उसने मुगल शासकों को घेर लिया। इसके साथ ही उसने खवास खान को कुछ सैनिक देकर मुंगेर की ओर मुगल सेना पर हमला करने के लिए भेज दिया। हुमायूं जब गौड़ की ओर बढ़ा था तब उसने खानखाना यूसुफ खैल को मुंगेर में छोड़ दिया था। शेरखान ने खवास खान को आदेश दिया कि खानखाना को बंदी बनाकर मेरे सामने पेश करो। इसका कारण उसने यह बतलाया कि इसी खानखाना ने बाबर को काबुल से हिंदुस्तान आने का निमंत्रण दिया था। इसका उत्तरदायित्व उसी पर था। खवास खान ने रात में एकाएक मुंगेर पर चढ़ाई कर दी और खानखाना को बंदी बनाकर शेरखान के पास बनारस ले आया। कुछ समय बाद बनारस पर भी शेरखान का अधिकार हो गया। दुर्ग के अधिकांश मुगल

सैनिक मार डाले गए। इस सफलता के बाद उसने जलाल खान, हैवत खान नियाजी और कुछ अन्य साथियों को बहराइच की ओर मुगलों को खदेड़ने के लिए भेजा। इन सरदारों ने मुगलों से संभल तक के प्रदेश छीन लिए और नगर को तोड़-फोड़ दिया। यहां के नागरिक बंदी बना लिए गए। उसने एक दूसरी सेना जौनपुर भेजकर वहां के मुगल शासक को मरवा डाला और उस नगर पर भी कब्जा कर लिया। शेरखान ने इसी विजयी सेना को अब आगरे की ओर रवाना कर दिया। इससे कन्नौज और संभल तक के क्षेत्रों पर अफगानों का अधिकार हो गया और मार्ग के सारे मुगल सेनानायकों को, जिन्होंने उसका विरोध किया था, या तो मार डाला गया या खदेड़कर शक्तिहीन कर दिया गया। शेरखान ने खवास खान को एक सेना देकर हुमायूं के एक सहयोगी जमींदार महर्ता के क्षेत्र पर अधिकार करने और उसे बंदी बनाने के लिए भेजा। इस समूचे विजित क्षेत्र का राजस्व शेरखान ने वसूल किया।

हुमायूं की मुसीबत बढ़ी

इसी बीच हुमायूं की मुसीबत बढ़ गई। उसे सूचना मिली कि मिर्जा हिंदल ने शेख बहलोल को मारकर आगरे में विद्रोह कर दिया है। शेख बहलोल हुमायूं का अत्यंत विश्वस्त और बहादुर दरबारी था। हुमायूं ने उसे हिंदाल का विद्रोह रोकने के लिए ही आगरे भेजा था।[1] इससे हुमायूं बहुत घबरा गया। उसने तत्काल बंगाल से आगरे की ओर प्रस्थान किया। वर्षा कम हो गई थी, इस कारण हुमायूं के लिए मौसम अनुकूल था। शेरखान ने इस बीच बिहार, जौनपुर और दूसरे स्थानों से सैनिकों को बुलाकर रोहतास के निकट एकत्र कर लिया। किंतु उसने महर्ता के जमींदार पर हमला करने के लिए जो सेना खवास खान के नेतृत्व में भेजी थी, उसे नहीं बुलवाया।

अब शेरखान ने हुमायूं को पस्त करने की बड़ी योजना बनाई। रोहतास में हुमायूं की कुछ सेना शेरखान की सेना को रोकने के लिए पड़ी थी। उसने इस बात का पक्का भरोसा करना चाहा कि उसके सरदार और साथी इस समय उसके प्रति निष्ठावान हैं और उसकी शक्ति और प्रभाव बढ़ाने में मदद देने को तैयार हैं। इस उद्देश्य से उसने अपने सरदारों को एकत्र कर उनसे कहा—"इस समय हुमायूं की सेना में बड़ी अव्यवस्था है, क्योंकि उसे बहुत समय तक व्यर्थ ही में बंगाल में रुकना पड़ा है। इसके अतिरिक्त आगरे में उसके भाई हिंदल ने विद्रोह कर दिया, इसी कारण

1. मखज़ने अफगाना के अनुसार शेख बहलोल हुमायूं का एक अत्यंत विश्वस्त दरबारी था, जिसे उसने हिंदल का विद्रोह रोकने आगरा भेजा था—दे. डॉर्न पृ. 116

वह मेरे प्रति उदासीनता दिखलाकर आगरे की ओर लौटने का विचार कर रहा है। यदि आप लोगों की सम्मति हो तो मैं इस सुअवसर पर उसके साथ संघर्ष करके अपने भाग्य की परीक्षा कर लूं, क्योंकि हमारी सेना में इस समय पूर्ण अनुशासन है। आप यह जानते ही हैं कि सम्राट के बंगाल की ओर बढ़ने के पूर्व मैंने नम्रतापूर्वक सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली थी और बंगाल के बदले मैंने उसे प्रति वर्ष पर्याप्त धन कर के रूप में देने का वचन दिया, क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि मुझे अपने संरक्षक सम्राट हुमायूं से किसी प्रकार का संघर्ष करना पड़े। सम्राट मुझे बंगाल देना चाहता था, किंतु सम्राट महमूद के दूत के आ जाने से उसने अपने वचनों का पालन करने के स्थान पर मुझे विवश किया कि उसके विरुद्ध शस्त्र धारण करूं। अब मैंने बिहार और जौनपुर के क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया है और इसीलिए मैं किसी प्रकार की भी संधि उससे नहीं करना चाहता हूं।"[1]

आजम हुमायूं सरवानी ने, जो सिकंदर लोदी का एक प्रमुख सरदार था और जो अब शेरखान का सहयोगी हो चुका था, उत्तर दिया—"आपको मुगलों से युद्ध करने के संबंध में बहलोल तथा सिकंदर लोदी के सरदारों से कोई परामर्श नहीं लेना चाहिए, क्योंकि पारस्परिक फूट के कारण मुगलों के विरुद्ध लड़ने की हमारी अब तक की सारी योजनाएं निष्फल रही हैं। यह आपका परम सौभाग्य है कि इस समय समस्त अफगान आपके झंडे के नीचे संगठित हो गए हैं। मुझे अनुभवी तथा युद्ध-दक्ष पुरुषों ने अनेक बार बतलाया है कि अफगानों की युद्ध-क्षमता किसी भी प्रकार से मुगलों से हीन कोटि की नहीं है, परंतु आपसी द्वेष-भाव के कारण ही मुगल उन्हें पराजित करते रहे हैं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि अफगान आप जैसे भाग्यशाली नेता के झंडे के नीचे संगठित होकर लड़ें तो वे मुगलों को भारत से शीघ्र ही भगा देंगे। इस संबंध में अपने दूसरे सरदारों से भी परामर्श ले सकते हैं। मेरा तो निजी मत यह है कि यदि आप युद्ध करें तो आपको अवश्य सफलता मिलेगी।"[2]

शेरखान ने आजम हुमायूं के इस परामर्श को सुनकर कुतुब खान, हैबत खान नियाजी जलाल खान बिन जलोई, सुजअत खान तथा सरमस्त खान सरवानी जैसे अपने सरदारों से भी इस विषय में परामर्श लिया और उन्होंने एक स्वर से उसे इस समय हुमायूं से लड़ने का परामर्श दिया। उन्होंने यहां तक कहा कि इस प्रकार का स्वर्ण-अवसर अफगानों को पुनः नहीं मिल सकता।

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी
2. वही

जब शेरखान ने देखा कि सारे अफगान हुमायूं के विरुद्ध सच्चे दिल से लड़ने को तैयार हैं तब वह सैनिकों को रोहतास की पहाड़ियों से निकाल लाया और हुमायूं का विरोध करने के लिए उसकी दिशा में चल पड़ा। कहा जाता है कि शेरखान बड़े धीरे-धीरे किंतु विशेष सावधानी के साथ आगे बढ़ता गया। जहां कहीं वह पड़ाव डालता था वहां तत्काल खाइयां खुदवाकर किलेबंदी कर लेता था। जब हुमायूं को शेरखान की इस सैनिक योजना का समाचार मिला तो उसने भी अपने सैनिकों को आदेश दिया कि वे अफगानों की दिशा में बढ़ें। शेरखान को जब हुमायूं के उसकी दिशा में आने की सूचना मिली तो उसने उसे संदेश भेजा कि यदि सम्राट उसे बंगाल का राज्य प्रदान कर दें तो वह सम्राट के नाम पर ही खुतबा पढ़वाएगा और सिक्के ढलवाएगा तथा उसका एक स्वामिभक्त अधीनस्थ नायक रहेगा। इसके साथ ही शेरखान ने आगे बढ़कर एक उचित स्थान पर पड़ाव डाल दिया। वह एक विशाल गांव के समीप रुका जो एक ऐसी नदी के किनारे बसा हुआ था जिसके दूसरे किनारे पर सम्राट की सेनाएं रुकी हुई थीं और जिसकी चौड़ाई केवल 25 गज थी।[1]

खवास खान को भी अब शेरखान ने महर्ता से शीघ्रातिशीघ्र लौट आने के आदेश भेजे। इधर हुमायूं को जब शेरखान का संधि-प्रस्ताव प्राप्त हुआ तो उसने उसके प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कहलवा दिया—"मैं तुम्हें बंगाल का राज्य देने को तैयार हूं, किंतु इस समय तुमने मेरे राज्य की सीमाओं का अतिक्रमण करके तथा मेरे ही सामने अपनी सेनाओं को खड़ा करके अत्यंत अनुचित कार्य किया है। तुम्हें मेरा उचित सम्मान करना चाहिए और वापस लौट जाना चाहिए। मैं नदी को पार करके 2-3 पड़ाव तक तुम्हारा पीछा भी करूंगा, किंतु उसके बाद वापस लौट जाऊंगा। यह मैं इसलिए करूंगा कि सारे सैनिक मेरी उत्तम सैनिक-शक्ति से परिचित हो जाएं।"[2] शेरखान ने हुमायूं की इन शर्तों को स्वीकार कर लिया और तदनुसार वह नदी के दूसरे किनारे से अपने पड़ाव को उठाकर पीछे हट गया। अब सम्राट ने पुल की सहायता से अपनी सेना और परिवार को नदी पार करवाई तथा उसके दूसरे किनारे पर पड़ाव डाल दिया।

1. मखजने अफगाना (मृ. पोथी, पृ. 212) के अनुसार शेरखान ने शाही पड़ाव के समाने शतैया नामक ग्राम के समीप अपनी सेनाओं को खड़ा कर दिया। यह गांव झुसा (चौसा) और बक्सर के बीच में स्थित है।

2. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

7. मुगलों से संघर्ष

हुमायूं ने जब शेख फरीद शकर गंज के वंशज शेख खलील को शेरखान के पास दूत के रूप में भेजकर यह संदेश भिजवाया कि अब उसे (शेरखान को) तत्काल प्रस्थान कर देना चाहिए और रास्ते में बिना रुके हुए रोहतास चले जाना चाहिए। सम्राट अपने पूर्व वचनों के अनुसार कुछ पड़ावों तक उसका व्याज रूप से पीछा करेगा और उसके पश्चात उसके वकील को बंगाल राज्य की प्राप्ति का फरमान दे देगा। तदनंतर हुमायूं आगरे की दिशा में चल पड़ेगा। शेख खलील ने शेरखान के पास पहुंचते ही उसे हुमायूं का संदेश कह सुनाया। शेरखान ने बाह्यतः तो इस योजना को स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की और शेख खलील का सम्मानपूर्वक स्वागत किया। कहा जाता है कि अपने साथ आए हुए मुगलों के सामने शेख खलील ने शेरखान को बहुत समझाया कि वह सम्राट की इच्छानुसार उससे संधि कर ले। उसी वाद-विवाद में उसने शेरखान से यह भी कह दिया कि "यदि तुम संधि नहीं करते हो तो फिर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।" शेरखान ने उत्तर देते हुए उससे कहा—"तुम्हारे इन वचनों को मैं अपने लिए शुभ-शकुन मानता हूं। यदि ईश्वर की यही इच्छा है तो मैं हुमायूं से अवश्य लडूंगा।" वाद-विवाद के पश्चात शेरखान ने शेख खलील के पास धन तथा माल्दा आम और बंगाल की अनेक बहुमूल्य वस्तुएं उपहार-स्वरूप भेजकर उसकी कृपा प्राप्त करने की सफल चेष्टा की। इसके पश्चात उसने शेख को गुप्त रूप से अपने पास बुलवाया और उससे कहा कि सारे अफगान शेख फरीद शकर गंज की अत्यधिक श्रद्धा करते हैं, क्योंकि वह उन्हीं की मातृभूमि का निवासी है। शेरखान ने उसे उसके इच्छानुकूल उपहार एवं पद प्रदान करने के वचन देते हुए कहा—"मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप मुझे परामर्श दें कि मैं सम्राट हुमायूं से युद्ध करूं अथवा संधि करूं। बुद्धिमान दूरदर्शी एवं धार्मिक व्यक्तियों से परामर्श लेना चहिए। आपमें ये सारे गुण विद्यमान हैं, अतः सूर्य के समान प्रकाशमान अपने मस्तिष्क पर बल देते हुए तथा मेरे हित को दृष्टि में रखते हुए आप निःसंकोच मुझे

परामर्श दीजिए कि इस अवसर पर मेरे लिए सम्राट से युद्ध करने अथवा संधि करने में से कौन-सी चीज अधिक लाभप्रद होगी।'' काफी सोच-विचार के पश्चात शेख खलील ने उत्तर दिया—''तुमने इस कठिन विषय पर मेरा परामर्श लेने की इच्छा प्रकट करके मुझे दुविधा में डाल दिया है। प्रथमतः मैं सम्राट का दूत बनकर आया हूं और दूत के रूप में मेरा प्रधान कर्तव्य सम्राट के हितों को सर्वोपरि समझना है। द्वितीयतः तुमने मेरी सलाह मांगी है और बुद्धिमान पुरुषों का कथन है कि यदि शत्रु भी सलाह मांगे तो सत्य का आश्रय लेते हुए उसे सही सलाह देनी चाहिए। अब यदि मैं तुम्हें उचित परामर्श न दूं तो मैं असत्यभाषी के रूप में कुख्यात हो जाऊंगा। शताब्दियों से अफगान मेरे पूर्वजों का सम्मान करते आए हैं और फिर हजरत मोहम्मद साहब का भी पवित्र आदेश है कि प्रत्येक मुसलमान को किसी भी भलाई के लिए उचित परामर्श ही देना चहिए। अतः मुझे विवश होकर तुम्हें वही परामर्श देना है जो तुम्हारे लिए हितप्रद हो। हुमायूं से इस समय संधि करने के स्थान पर युद्ध करना ही तुम्हारे लिए अधिक अच्छा है, क्योंकि उसकी सेना में कोई अनुशासन नहीं है, उसके पास घोड़ों और पशुओं का सर्वथा अभाव है तथा उसके सगे भाई उसके विरुद्ध विद्रोह कर चुके हैं। सम्राट भी इस समय परिस्थिति से विवश होकर तुम्हारे साथ संधि करने का इच्छुक है और मेरा यह विश्वास है कि वह शीघ्र ही इस संधि को भंग कर देगा। तुम्हें इस सुअवसर से लाभ उठाना चाहिए, क्योंकि ऐसा स्वर्ण अवसर कभी नहीं मिलेगा।''[1] शेरखान जो अभी तक हुमायूं से लोहा लेने के बारे में पक्का निर्णय नहीं कर सका था, शेख खलील के इस परामर्श को सुनकर अत्यंत प्रसन्न हो उठा और अब उसने मुगलों से संधि करने का विचार स्थायी रूप से त्याग दिया। उसने खवास खान को पहले ही बुलवा भेजा था और उसके आ जाने पर उसने अपनी सारी सेना को इस प्रकार युद्ध पंक्तियों में खड़ा कर दिया जैसे वे महर्ता के आक्रमण का विरोध करने के लिए तैयार हों। अपने पड़ाव से चार चार कोस की दूरी तक बढ़ने के पश्चात वह अपनी सारी सेना के साथ लौट पड़ा और उसने यह प्रकट किया कि गुप्तचरों के कथनानुसार महर्ता की सेनाएं अभी बहुत दूर हैं।

दूसरे दिन भी उसने अपनी सेना को युद्ध पंक्तियों में खड़ा किया और वह कई कोस आगे बढ़ने के पश्चात पुनः वापस लौट आया तथा घोषित किया कि उस दिन भी महर्ता की सेनाओं के आने की उसे कोई आशा न थी। उसी दिन अर्द्धरात्रि

1. मखजने अफगाना के अनुसार हुमायूं केवल दिखलावे के लिए ही शेरखान का पीछा करना चाहता था, जिससे उसका सम्मान बना रहे।—दे. डार्न, पृ. 120

के कुछ पहले उसने अपने समस्त सरदारों को एकत्र करके उनसे कहा—"मैंने सम्राट से संधि करने का वचन दे दिया है, परंतु आज तक मैंने जितनी स्वामिभक्ति से उसकी सेवा की है उसका कोई फल नहीं मिला है। मैंने सुलतान महमूद को हराने में सच्चे हृदय से सम्राट का साथ दिया, परंतु उसके पुरस्कार स्वरूप मुझसे चुनार का दुर्ग मांगा गया। मैंने जब इस दुर्ग को समर्पित करने से इनकार कर दिया तो हुमायूं ने मेरे विरुद्ध एक सेना भेजी। जब यह सेना भी मुझसे दुर्ग लेने में असमर्थ रही तब सम्राट स्वयं इस दुर्ग को छीनने के लिए चुनार आ गया। इसी मध्य जब मोहम्मद जमान मिर्जा ने जेल से भागकर उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और गुजरात के शासक सुलतान बहादुर शाह ने दिल्ली पर चढ़ाई करने का विचार किया तो हुमायूं को चुनार मेरे अधिकार में छोड़कर दिल्ली लौट जाना पड़ा। इसके अतिरिक्त मेरे पुत्र कुतुब खान ने गुजरात की सारी लड़ाइयों में उसका साथ दिया जबकि राजधानी से सम्राट की अनुपस्थिति के समय में जौनपुर और उसके आस-पास के मुगल क्षेत्रों पर वह अधिकार कर सकता था, किंतु मैंने सम्राट को एक शक्तिशाली संरक्षक समझकर ऐसा नहीं सोचा। मैं नहीं चाहता था कि किसी प्रकार भी सम्राट से मेरा संघर्ष हो, जिससे कि वह मुझे हानि पहुंचाने की चेष्टा करे। गुजरात से लौटने पर उसने अपनी सेनाओं को मेरे विरुद्ध प्रस्थान करने का आदेश दे दिया। उसने मेरी स्वामिभक्ति का कोई विचार न करके मुझे इन क्षेत्रों से खदेड़ने का संकल्प किया, किंतु भाग्य ने मेरा साथ दिया और उसे अपनी किसी भी योजना में सफलता न मिली। मैंने उसकी अधीनता में शासक के रूप में बने रहने के उसके सामने कई प्रस्ताव रखे, किंतु सम्राट ने मेरी सारी प्रार्थनाओं को ठुकरा दिया। जब उसने सच्चाई पर विश्वास करना पूर्णतः त्याग दिया और जब मुझे उससे अधिक भय की आशंका होने लगी तो मैंने भी विवश होकर उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मैंने अपनी शक्ति से संभल तक के मुगल प्रदेशों को रौंद डाला है तथा इन क्षेत्रों से मुगल शासकों तथा सैनिकों को भगा दिया है। अब आप लोग स्वयं निर्णय कीजिए कि मैं किन आशाओं से उसके साथ संधि करूं ? इस समय वह मुझसे मैत्रीपूर्ण संधि करना चाहता है, क्योंकि उसके पास घोड़ों तथा सैनिक सामग्री का अभाव है और उसके भाइयों ने भी राजधानी में उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया है। मेरा विश्वास है कि इस समय वह मुझे धोखा देकर संधि कर रहा है। वह भाइयों के विद्रोह को शांत करने तथा अपनी सेनाओं का पनुर्संगठन करने के पश्चात अफगानों पर आक्रमण करने तथा उनका विनाश करने के प्रयास से विमुख नहीं होगा। मैंने प्रायः यह अनुभव किया है कि सैनिक क्षमता में अफगान मुगलों से कहीं श्रेष्ठ हैं, किंतु पारस्परिक फूट के

कारण ही मुगलों ने उनसे इन देशों को हस्तगत किया है। यदि आप समस्त भ्राताओं की आज्ञा हो तो मैं उसके संधि-प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दूं तथा अपने भाग्य की परीक्षा करूं।''

उन सबने एक स्वर से शेरखान को उत्तर दिया—''आपके नेतृत्व के कारण अफगानों में अब द्वेषभाव समाप्त हो गया है और आपके प्रोत्साहन से हम सब एकता के सूत्र में बंध गए हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि मुगलों के विरुद्ध लड़ने में हम वीरता और स्वामिभक्ति की दृष्टि से कभी पीछे नहीं रहेंगे। आपका सम्राट से युद्ध करने का विचार अभिनंदनीय है।''

शेरखान ने उनको प्रोत्साहन देते हुए कहा—''मैं हुमायूं से संधि नहीं करूंगा और मियां निजामी के परामर्शानुसार सर्वशक्तिमान ईश्वर पर विश्वास करते हुए उनके विरुद्ध युद्ध घोषित करूंगा।'' इस प्रकार के परामर्श के पश्चात उसने अपने सरदारों को आदेश दिया कि अब वे जाकर अपने सैनिकों को युद्ध-पंक्तियों में खड़ा कर दें और यह प्रकट करें कि उन्हें शीघ्र ही महर्ता के आक्रमण का सामना करना है। कहा जाता है कि जब अभी एक प्रहर रात्रि शेष थी तभी उसने अपनी सारी सेना को महर्ता के देश की दिशा में प्रस्थान करने का आदेश दिया। ढाई कोस चलने के पश्चात उसने अपनी सेना को रोक दिया और सैनिकों को संबोधित करते हुए कहा—''दो दिन तक मैं तुम्हें पड़ाव से बाहर लाता रहा हूं और पुनः लौटाता रहा हूं जिससे मैं सम्राट को असावधान किए रहूं और उसे यह संदेह न होने दूं कि मैं उसके विरुद्ध आक्रमण करना चाहता हूं। अब तुम लोगों को तेजी से घूमकर मुगलों पर टूट पड़ना चाहिए। अब तुम्हें अफगानों के गौरव के अनुरूप शत्रु से पूरी वीरता से लड़ना है, क्योंकि हिंदुस्तान के खोए हुए साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने का यही एक उत्तम अवसर है।'' उसके सैनिकों ने उसे विश्वास दिलाते हुए कहा—''आपको हमारी स्वामि-भक्ति और कर्तव्यपरायणता पर किसी प्रकार का अविश्वास नहीं करना चाहिए।''

नमाज पढ़ने तथा ईश्वर से विजय की दुआ मांगने के बाद उसने अपनी सैनिक टुकड़ियों को फिर युद्ध-पंक्तियों में खड़ा किया और बड़ी तेजी के साथ हुमायूं की सेना पर आक्रमण के लिए बढ़ने लगा। जब शेरखान के सैनिक हुमायूं के पड़ाव के समीप पहुंच गए तो उसे उसके दूतों ने बतलाया कि शेरखान अपनी सारी सेना के साथ पूरी तेजी से उसपर आक्रमण के लिए बढ़ता आ रहा है। सम्राट ने अपने सरदारों को आदेश दिया कि वे भी मुगल सैनिकों को अफगानों से लड़ने के लिए तैयार करें। उसने साथ ही यह भी कहा कि वजू आदि से निवृत्त होने के पश्चात मैं स्वयं भी युद्ध-स्थल पर पहुंच रहा हूं। निःसंदेह सम्राट युद्ध में अपनी वीरता के

लिए विख्यात था और साहस तथा शौर्य में उसकी तुलना कोई नहीं कर सकता था। अतः युवावस्था के गर्व और अपने असंख्य वीर तथा साहसी मुगल सैनिकों से आश्वस्त होकर उसने शेरखान की सैनिक शक्ति को कोई महत्व न दिया। उसने सैनिकों को युद्ध पंक्तियों में खड़ा करने अथवा उन्हें उचित ढंग से सुसज्जित करने की ओर कोई ध्यान न दिया। उसने इस बात का भी विचार न किया कि बंगाल की जलवायु के कुप्रभाव ने उसकी सेना को जर्जर कर दिया था। इसके विपरीत शेरखान युद्ध की चालों में पूर्णतः दक्ष था और वह यह भली-भांति जानता था कि किस समय युद्ध शुरू किया जाए और किस समय इसे समाप्त किया जाए। उसने युद्ध में जय और पराजय दोनों का अनुभव किया था। कहा जाता है कि मुगल सैनिक अभी तक अपने पड़ाव में ही पड़े थे कि अफगान सैनिकों ने आगे बढ़कर बड़े साहस से उन पर आक्रमण कर दिया और क्षणभर में उनको खदेड़ दिया। हुमायूं अभी वजू से भी निवृत्त नहीं हो पाया था कि उसे अपनी सेना के छिन्न-भिन्न हो जाने की सूचना मिली। अपनी सेना की अव्यवस्था को देखकर हुमायूं इतना घबरा गया कि उसने अपने बाल-बच्चों को संभालने की भी परवाह न की और सीधा आगरा की दिशा में भाग खड़ा हुआ। उसकी योजना थी कि राजधानी में पहुंचकर वह फिर से अपनी सेना का संगठन करे और शत्रु का विनाश करने के लिए उस पर आक्रमण करे।

जब हुमायूं की बेगम तथा दूसरी मुगल स्त्रियां परदे से बाहर लाई गई तो शेरखान अपने घोड़े से उतर पड़ा। उसने उन स्त्रियों के प्रति सम्मान प्रकट किया और उन्हें ढाढ़स दिलाया। इसके पश्चात उसने नमाज पढ़कर ईश्वर के प्रति अनेक बार कृतज्ञता प्रकट की तथा हाथ फैलाकर आकाश की ओर देखते हुए साश्रु नेत्रों से कृतज्ञता प्रकट की। तदनंतर उसने अपनी सेना में सार्वजनिक घोषणा करवा दी कि कोई भी अफगान सैनिक किसी भी मुगल स्त्री-बच्चे तथा दासी को एक रात के लिए भी अपने खेमे में न रखे। यदि किसी सैनिक को मुगल स्त्री आदि हाथ लगी हो तो वह उसे तत्काल बेगम के पड़ाव में पहुंचा दे। शेरशाह की इस कठोर आज्ञा का उल्लंघन करने का किसी भी सैनिक में साहस न था। रात्रि होने से पहले ही सारी मुगल स्त्रियां बेगम के पड़ाव में पहुंच गई और सबको पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री बांट दी गई। कुछ दिनों के पश्चात शेरखान ने बेगम को हुसैन खान नीरक की देख-रेख में रोहतास भेज दिया, किंतु अन्य मुगल स्त्रियों के लिए सवारी आदि की व्यवस्था करके उन्हें आगरे भिजवा दिया।[1]

---

1. नियामतुल्ला के अनुसार यह घटना 946 हि. (सन 1539) के मोहर्रम मास (मार्च) में हुई थी।

इस विजय के बाद शेरखान ने हजरतअली की उपाधि धारण की। अब उसके भाग्य का सितारा दिन-प्रति-दिन और अधिक चमकने लगा। उसने अपने लिपिकों (मुंशियों) को आदेश दिया कि वे उसके साम्राज्य के प्रत्येक भाग में इस विजय का समाचार भेज दें। उमर खान के पुत्र मसनदेआली ईसा खान ने, जिसे सुलतान बहलोल के समय में खानेआजम की उपाधि दी गई थी और जो तातार खान यूसुफ खैल की मृत्यु के बाद लाहौर का जागीरदार था, शेरखान से कहा—"आपको इस विजय का समाचार अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में फरमान के रूप में भेजना चाहिए।" शेरखान ने उत्तर दिया—"आप लोग सुलतान बहलोल और सुलतान सिकंदर के समय के सम्मानित सरदार हैं और आप लोगों ने अफगानों के गौरव को बढ़ाने के लिए मेरी सहायता करके मुझे कृतार्थ किया है। अतः मुझे यह शोभा नहीं देता कि मैं आप लोगों के पास फरमान भेजूं। मैं इस बात को भी उचित नहीं समझता हूं कि मैं सिंहासन पर आसीन होऊं और आप लोग खड़े रहें। इसके अतिरिक्त हुमायूं हम लोगों से जीवित बचकर निकल गया है और अब भी उसका हिंदुस्तान के एक विशाल क्षेत्र पर अधिकार है।" मसनदेआली ईसा खान ने अपनी भावनाएं व्यक्त करते हुए शेरखान से कहा—"मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मैं आपको सिंहासन पर आसीन देखूं। सुलतान बहलोल तथा उसके उत्तराधिकारियों ने अपने अफगान सरदारों के सम्मान के कारण सिंहासन पर बैठना अस्वीकार किया, परंतु वस्तुतः यह उनकी भूल थी और उन्होंने शासकों की प्रथाओं की अवहेलना की जिसे सर्वशक्तिमान ईश्वर सम्राट बनाकर सिंहासन प्रदान करता है और जिसे सर्वसाधारण से अधिक सम्मानित पदवी देता है उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह पहले के शासकों की तरह ही लोगों के साथ व्यवहार करे।" तदनंतर आजम हुमायूं सरवानी ने शेरखान से निवेदन किया—"मुगल दो पीढ़ियों से इस देश पर शासन कर रहे हैं। वे अफगानों से घृणा करते हैं तथा युद्ध-क्षेत्र में उन्हें अपने से हीन समझते हैं। आज आपकी बुद्धिमत्ता एवं कुशल नेतृत्व के कारण अफगानों ने उन्हें पराजित कर दिया है।" इस पर मियां बबिन लोदी और अन्य अफगान सरदारों ने एक स्वर से कहा—"अफगानों की सेना में मसनदेआली कल्कापुर सरवानी और आजम हुमायूं सरवानी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है और उन्होंने जो कुछ कहा है वह सर्वांश में सत्य और अवसर के अनुकूल है। अब आपको सिंहासन पर आसीन होने में देर नहीं करनी चाहिए।" अफगान सरदारों के इस एकमत से शेरखान अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने पुनः विनम्र भाव से कहा—"सम्राट की पदवी धारण करना एक गुरुतर कार्य है और उसके निर्वाह करने में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, परंतु मेरे बुद्धिमान सरदार मुझसे

उस उत्तरदायित्व को वहन करने का आग्रह कर रहे हैं, अतः मैं उसे स्वीकार करता हूं।" उसने ज्योतिषों को सिंहासन पर बैठने का शुभ मुहूर्त निकालने का आदेश दिया और सब ज्योतिषियों ने ग्रह-नक्षत्र आदि विचारने के बाद प्रसन्नतापूर्वक कहा—"आपके सौभाग्य से जन्म-लग्न के अनुसार आपका सिंहासन पर आसीन होने का समय आ गया है। यदि आप इस समय सिंहासन पर आसीन होते हैं तो आपकी विजयिनी सेना सदैव अपराजेय रहेगी और दुर्दांत शत्रुओं को भी उसके समक्ष नतशिर होना पड़ेगा।" उनके द्वारा बताए गए मुहूर्त में वह सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने छत्र धारण किया और शेरशाह की उपाधि ग्रहण की। उसने अपने नाम के सिक्के ढलवाए और खुतबा पढ़वाया। कहा जाता है कि इस अवसर पर उसने 'शाहआलम'[1] की उपाधि भी धारण की। अब शेरशाह ने ईसा खान से कहा—"आप शेख मलाही के पुत्र हैं और आपके ही आग्रह पर बैठकर सिक्के ढलावाए हैं तथा अपने नाम का खुतबा पढ़वाया है। अतः इस विजय को सूचित करने वाला एक फरमान आप स्वयं अपने हाथ से लिखें और दूसरे मुंशी लोग उसकी प्रतिलिपियां कर लेंगे। ईसा खान ने सम्राट के आदेशानुसार एक फरमान स्वयं अपने हाथ से लिखा और मुंशियों ने उसकी प्रतिलिपियां कीं। सात दिन तक हर्ष के नगाड़े निरंतर रूप से बजते रहे और सभी दिशाओं से अफगान युवक आ-आकर हर्षोल्लास से नाचते रहे, क्योंकि ऐसे उत्सवों के अवसर पर अफगानों में इसी प्रकार की प्रथा है।

शेरखान ने स्वयं सम्राट हुमायूं का पीछा किया और काल्पी तथा कन्नौज तक के समस्त क्षेत्रों पर अपना अधिकार कर लिया। उसने खवास खान को पुनः महर्ता चेरुह को पूर्णतः नष्ट करने के लिए भेजा। उस समय बंगाल में जहांगीर कुली बेग का बोलबाला था। उसके पास 6000 अश्वारोहियों की सेना थी, अतः शेरशाह ने आदेश दिया कि उसे युद्ध में परास्त करके मौत के घाट उतार दिया जाए। सम्राट हुमायूं का पक्ष ग्रहण करने वाले हिंद के समस्त सरदारों को शेरशाह ने छोड़ दिया परंतु उसने शेख खलील को रोके रखा और उसे अपना विश्वस्त सलाहकार तथा मित्र बना लिया। ईसा खान को गुजरात और मांडू की ओर भेजकर उसने वहां के समस्त सरदारों के नाम इस आशय का पत्र भेजा—"मैं अपने पुत्र को एक सेना सहित आपके प्रदेशों की ओर भेजने की योजना बना रहा हूं। मेरी यह इच्छा है कि जिस समय सम्राट हुमायूं कन्नौज की ओर बढ़े, उस समय आप लोग मेरे पुत्र की

---

1. बाकियाते मुश्तकी में भी उसकी यही उपाधि दी गई है, परंतु शेरशाह के सिक्कों से ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी उपाधि 'सुल्तानुल आदिल' थी—दे. क्रोनिकल्स ऑफ पठान किंग्ज—थॉमस; पृ. 395

सहायता करें और आगरा तथा दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों को उजाड़ कर उन्हें अधिकार में कर लें। क्या आप लोग मेरी इस योजना को स्वीकार करते हैं ? उस समय मल्लू खान नाम का एक व्यक्ति मांडू, सारंगपुर और उज्जैन का राजा बना हुआ था और उसने कादिर शाह की उपाधि धारण कर रखी थी। रायसेन और चंदेरी में सलाहुदीन के पौत्र तथा भूपत शाह के पुत्र राजा प्रताप (जो स्वयं अल्पवयस्क था) के प्रतिनिधि के रूप में भइया पूरणमल शासन कर रहा था। देवास में सिकंदर खान मियां शासक था और भोपाल पर महेश्वर का आधिपत्य था। इन सब शासकों ने पारस्परिक मंत्रणा के पश्चात यह उत्तर भेजा कि शेरशाह के पुत्र के आने पर हम अवश्य उसकी सहायता करेंगे। इस पत्र पर मांडू के शासक मल्लू खान ने अपनी मोहर लगाई और उसे शेरशाह की सेवा में भेज दिया। पत्र के प्राप्त होने पर शेरशाह ने पत्र को तो फाड़ डाला परंतु (व्यंग्य रूप से कृतज्ञता प्रकट करते हुए) उसकी मोहर को अपनी पगड़ी में लगा लिया।

जब ईसा खान गुजरात पहुंचा, तब वहां का शासक सुलतान महमूद अल्पवयस्क था और राज्य का सारा कार्य उसका मंत्री दरया खान कर रहा था। उसने गुजरात की वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुए ईसा खान के पास पत्र लिखा कि हमारे राजा अल्पवयस्क हैं, राज्य के सारे सरदार पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के शिकार बने हुए हैं और गुजरात तथा मांडू की सारी सेना को खानखाना यूसुफ खैल अपने साथ ले जा चुके हैं। ईसा खान ने इस स्थिति को देखकर तुरंत शेरखान के पास पत्र भेजा और उसमें स्पष्ट रूप से लिख दिया कि, "खानखाना यूसुफ खैल ही वह व्यक्ति है जो सदैव अफगानों के दुर्भाग्य का कारण बना है। सम्राट बाबर को काबुल से भारत ले आने वाला यही है। यदि हुमायूं भी इसके सत्परामर्श पर चलता तो आज उसकी यह स्थिति न हुई होती, परंतु आपके सौभाग्य से उसने खानखाना की बात न मानी। अब मेरी यह राय है कि खानखाना को मरवा देना चाहिए चाहे वह मुंगेर में बंदी के रूप में ही क्यों न रहा हो। अब अधिक समय तक उसे जीवित रहने देना उचित नहीं है।" इस पत्र के प्राप्त होने पर शेरखान ने कहा, "यद्यपि हर अफगान कहता है कि खानखाना अत्यंत बुद्धिमान सरदार है और उसके मरवाने को अच्छा नहीं कहता, परंतु मैं स्वयं ईसा खान की बात से सहमत हूं।" अतः उसने आदेश भेजे कि मुंगेर की विजय में बंदी बनाए गए खानखाना यूसुफ खैल को, जिसे प्रतिदिन आधा सेर जौ बंदी के रूप में दिए जाते थे, मार दिया जाए और उसके आदेशानुसार खानखाना को प्राण दंड दिया गया।

इसी समय सूचना मिली कि सम्राट हुमायूं कन्नौज की ओर आक्रमण करने

की योजना बना रहा है। शेरखान ने अपने पुत्र कुतुब खान को कुछ सेना के साथ मांडू की ओर भेजा ताकि वह वहां के शासकों के सम्मिलित प्रयास से आगरा तथा दिल्ली तक के समस्त प्रदेशों को जीते और उजाड़े। जब हुमायूं को यह ज्ञात हुआ कि कुतुब खान को अव्यवस्था फैलाने के लिए गुजरात की ओर भेजा गया है तो उसने मिर्जा हिंदल, मिर्जा असकरी और अपने कुछ सरदारों को उस दिशा में भेजा। जब मालवा के शासकों को हुमायूं के इन भ्राताओं तथा सरदारों के आने का समाचार मिला तो उन्होंने कुतुब खान को सहायता देने का इरादा छोड़ दिया। कुतुब खान चंदेरी से चोंधा[1] की ओर बढ़ा और वहीं पर अफगानों पर मुगलों की विजय हुई। विजय के पश्चात मिर्जा हिंदल तथा मिर्जा असकरी पुनः हुमायूं से आ मिले।

जब शेरशाह को यह समाचार मिला कि मांडू के प्रदेश के शासकों ने कुतुब खान की कोई सहायता नहीं की है और इसके परिणामस्वरूप कुतुब खान वीरगति को प्राप्त हो गया है तो वह अत्यंत दुखी हुआ। वहां के शासकों के विरुद्ध वह क्रोध से भर गया, परंतु उस क्रोध को उसने प्रकट नहीं होने दिया। इस विजय से मुगल सेनाओं का आत्मविश्वास और भी अधिक बढ़ गया। इस बीच हुमायूं ने अपने देश से और भी मुगलों को बुला लिया था और इस प्रकार उसके पास आत्मविश्वास से युक्त एक विशाल मुगल सेना एकत्र हो चुकी थी। उसने अपनी सेनाओं को सुसंगठित किया और हिजरी सन 946 की जिल्कदा (अप्रैल 1540 ई.) को कन्नौज के समीप आ गया। उधर शेरशाह ने भी गंगा के दूसरे किनारे अपनी सेनाओं को युद्ध के लिए तैयार कर रखा था। इसी समय शेरशाह को यह शुभ समाचार मिला कि खवास खान ने महर्ता को युद्ध में पराजित करके मार डाला है। इस समाचार से अफगान सेनाएं हर्ष से भर गई और इस विजय का उत्सव बड़े उमंग और उल्लास के साथ मनाया जाने लगा। शेरशाह ने खवास खान के पास यह समाचार भिजवाया, "तुम शीघ्रता के साथ प्रस्थान करके अविलंब यहां चल आओ, क्योंकि मैं और तुम्हारे सब मित्र तुम्हारे आगमन की आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम लोगों की यह इच्छा है कि हुमायूं से युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व तुम हमसे आ मिलो। इस समय हम सबकी दृष्टि तुम्हारे आगमन की दिशा की ओर लगी हुई है।"

जब शेरखान को खवास खान के समीप आने का समाचार मिला तो उसने सम्राट हुमायूं के पास यह संदेश भिजवाया—"मैं कुछ समय से अपनी सेना सहित यहां रुका हुआ हूं। आप स्वयं निर्णय करें। यदि आप चाहें तो नदी पार करके मुझ

1. यह नाम बड़ा संदेहास्पद है। तिमर वंश के इतिहास लेखकों के अनुसार यह युद्ध काल्पी में हुआ था।

से इधर युद्ध कर सकते हैं और यदि आप आज्ञा दें तो मैं नदी पार करके आपसे युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो सकता हूं। मैं इस विषय में आपकी इच्छा को ही सर्वोपरि महत्व देता हूं।" जब संदेशवाहक ने यह समाचार हुमायूं को सुनाया तब सम्राट ने शेरशाह के प्रति घृणा का भाव प्रकट करते हुए कहा, "तुम शेरखान से जाकर कहो कि यदि वह नदी के किनारे से कुछ कोस पीछे हट जाए तो मैं स्वयं नदी पार करके उससे युद्ध करूंगा।" जब सेवक ने सम्राट का संदेश शेरखान से कहा तब वह गंगा के किनारे से कई कोस पीछे हट गया। उसके हट जाने पर हुमायूं ने गंगा पर एक पुल बनवाया और उसकी सहायता से नदी को पार किया। हुमायूं के नदी पार करते समय शेरखान के एक सरदार हमीद खान ककर ने उसे परामर्श दिया—"पूरी मुगल सेना के इधर उतर आने के पूर्व ही हमें उसपर आक्रमण कर देना चाहिए।" परंतु शेरखान ने उसे उत्तर दिया—"मैं पहले कभी इतनी अच्छी स्थिति में नहीं रहा हूं जितनी कि मेरी सुदृढ़ स्थिति इस समय है और इसीलिए पिछले युद्धों में मुझे अनच्छिा पूर्वक छल-प्रपंच का आश्रय लेना पड़ा था, परंतु जब स्थिति अनुकूल है तो अब मुझे कपट का आश्रय लेना शोभा नहीं देता। इस समय सर्वशक्तिमान की असीम अनुकंपा से मेरी सेना सम्राट हुमायूं की सेना से किसी भी रूप में हीन नहीं है। मैं अपने वचनों को भंग नहीं करूंगा। जब हुमायूं की सेना पार उतर आयेगी तब मैं उस पर आक्रमण करूंगा और किसी धोखे का आश्रय नहीं लूंगा। युद्ध का परिणाम जो ईश्वर की इच्छा होगी, वही होगा।"[1] जब हुमायूं की संपूर्ण सेना नदी पार उतर आई तो शेरखान उसके समीप लौट आया और अपनी पूर्व योजना के अनुसार हुमायूं की सेना के सामने मिट्टी की दीवार खड़ी करवाकर उसने उसके पीछे अपनी सेना को अवस्थित किया।

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

8. अफगान सेना विजय की ओर

कुछ दिनों के बाद खवास खान भी वहां आ पहुंचा। उसके आते ही शेरखान ने युद्ध का विगुल बजा दिया और सम्राट की सेना में आनेवाली रसद को रोक दिया। उसने सम्राट की सेना के 300 ऊंटों और अनेक बैलगाड़ियों पर भी अधिकार कर लिया। हिजरी सन 947 के मोहर्रम मास की दसवीं तारीख[1] को दोनों सेनाएं एक-दूसरे के आमने-सामने खड़ी थीं। शेरशाह ने अपनी सेना को इस प्रकार खड़ा किया था कि सेना के मध्य भाग में वह स्वयं था और उसके साथ हैवत खान नियाजी (जिसकी उपाधि आजम हुमायूं भी थी) मसनदेआली ईसा खान सरवानी, वगैरह प्रसिद्ध सवार थे। दक्षिण पार्श्व में शेरशाह का पुत्र जलाल खान था, जो शेरशाह के बाद भारत का सम्राट बना और जिसने इस्लाम शाह की उपाधि धारण की। उसके साथ ताज खान, सुलेमान खान किरानी, जलाल खान जलोई और दूसरे अफगान सरदार थे। सेना की बाईं तरफ की कमान शेरशाह के दूसरे पुत्र आदिल खान के हाथ में थी और उसके साथ कुतुब खान, राय हुसेन जलवानी आदि दूसरे सरदार थे। सेना को इस प्रकार खड़ा करने के बाद शेरशाह ने समस्त अफगान सैनिकों और सरदारों को संबोधित करते हुए कहा—"आप सब लोगों को उच्चकोटि की सैनिक शिक्षा देने में भी मैंने कोई कसर उठा नहीं रखी है। जिस दिन के लिए मैंने आपको तैयार किया है कि वह दिन आज आ पहुंचा है। आज ही आप लोगों की परीक्षा का दिन है। इस युद्ध में जो सैनिक अपनी युद्ध-विलक्षणता और शौर्य का परिचय देगा उसे मैं उच्च पद प्रदान करूंगा।" शेरखान के इस भाषण को सुनकर समस्त अफगान उत्साह से भर गए और उन्होंने एक स्वर से कहा—"शक्तिशाली स्वामी के रूप में आपने सदैव हमारे हितों की रक्षा की है और हमें सुसंगठित करके एक नई चेतना और उत्साह से अनुप्राणित किया है। अब हमारा भी कर्तव्य है कि प्राणों की बाजी लगाकर

---

1. 17 मई, 1540

इस युद्ध के काल में आपकी सेवा करें और इसी संकल्प को लेकर हम इस युद्ध में अपनी शक्ति का परिचय देंगे।'' शेरशाह ने अपने सरदारों को आदेश दिया कि वे अपने अपने स्थानों पर डटे रहें। उसने स्वयं घूमकर एक बार पुनः अपनी सेना का निरीक्षण किया और उन्हें युद्ध के लिए सन्नद्ध रहने का आदेश दिया।

युद्ध का आरंभ

सर्वप्रथम खवास खान की सेना ने सम्राट हुमायूं की सेना का आक्रमण कर उसकी रक्षा-पंक्तियों को छिन्न-भिन्न कर डाला। परंतु शेरशाह की सेना पर दक्षिण तरफ से जिसकी कमान जलाल खान के हाथ में थी, हुमायूं की सेना का इतना प्रबल आक्रमण हुआ कि अनेक सरदार मारे गए, फिर भी जलाल खान मियां अयूब कल्कापुर सरवानी और गाजी मुज्ली जैसे प्रसिद्ध सरदारों ने अपनी जगह न छोड़ी। जब शेरशाह ने देखा कि दक्षिण की सेना की हालत डांवाडोल है तब उसने स्वयं उसकी सहायता के लिए जाने का निश्चय किया, परंतु कुतुब खान लोदी ने मना करते हुए कहा—''आपको अपने स्थान से नहीं हटना चाहिए। यदि आप यहां से हट जायेंगे तो लोग यह समझेंगे कि हमारी सेना का मध्य भाग भी छिन्न-भिन्न हो गया है। आप तो सीधे शत्रु सेना के मध्यभाग पर आक्रमण करते रहिए।'' जब शेरशाह की सेना आगे बढ़ी तब उसका सामना हुमायूं की उस सेना से हुआ जो अभी अभी दक्षिण की तरफ की सेना को छिन्न-भिन्न कर चुकी थी। इस सेना पर शेरशाह का इतना भयंकर आक्रमण हुआ कि वह हार गई और सम्राट की सेना के मध्य भाग से और पीछे हट गई। उधर आदिल खान और कुतुब खान की सेना ने अपने सामने वाली हुमायूं की सेना को भगा दिया था। अब शेरशाह और आदिल खान की सेनाएं सम्मिलित रूप से सम्राट की सेना के मध्य भाग पर टूट पड़ीं। इसी बीच जलाल खान की भागती हुई सेना भी पुनः एकत्र हो गई और इस प्रकार मुगल सेनाएं अफगानों की इन तीनों कमानों की सेनाओं से पूरी तरह घिर गईं। इस युद्ध में शेरशाह के पुत्रों और अन्य अनेक अफगान सरदारों ने अभूतपूर्व शौर्य का परिचय दिया। इनमें हैवत खान नियाजी और खवास खान की वीरता उल्लेखनीय है। इन दोनों योद्धाओं ने अपनी तीक्ष्ण कृपाणों और जीवनहर भालों के वारों से मुगलों के छक्के छुड़ा दिए तथा उन्हें पीछे हटने पर बाध्य किया। इतना भीषण प्रहार होने पर भी हुमायूं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वह अपने हाथी पर पर्वत की भांति अडिग होकर युद्ध करता रहा और इस संघर्षकाल में उसने वीरता और शौर्य का अद्‌भुत परिचय दिया।

जब हुमायूं ने देखा कि अफगानों की ओर से ये दुर्दमनीय योद्धा युद्ध में प्राणपण

से जुटे हुए हैं तब तो उसने ईश्वर की इच्छा को बलवती समझकर युद्ध से विरत हो जाने का संकल्प किया। उसने अपने योद्धाओं के भरोसे युद्ध को छोड़ दिया और अब राजधानी आगरे की ओर प्रस्थान कर दिया। इस नर-संहारक युद्ध में उसका शरीर तो अक्षत रहा, परंतु उसकी सेना का अधिकांश भाग गंगा की धारा में नष्ट हो गया। 'मखजने अफगानी' और 'तारीखे खान जहान' का कथन है कि गंगा पर एक पुल था। युद्ध में हारकर भागते समय मुगल सेना के अत्यधिक भार के कारण वह पुल टुट गया और इसलिए अधिकांश मुगल सेना नष्ट हो गई। सभी इतिहास लेखक इस बात पर तो सहमत हैं कि गंगा में एक पुल था जिसकी सहायता से मुगल सेनाओं ने गंगा को पूर्व की ओर पार किया था परंतु भागते समय भी मुगलों ने इसी का उपयोग किया, इस बात को कुछ ही लेखक मानते हैं। स्वयं सम्राट हाथी से ही युद्ध-क्षेत्र से भागा था और उस हाथी ने बड़ी कठिनाई से नदी को तैरकर पार किया था। मुगलों के भाग जाने के बाद आश्वस्त होकर शेरशाह ने शुजाअत खान को, जिसे वह बिहार और रोहतास में फौजदार के रूप में नियुक्त कर आया था, यह आदेश भिजवाया कि वह तुरंत ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार कर ले। इस फरमान को ले जाने वाले दूत से शेरखान ने कहा "शुजाअत खान का पुत्र महमूद खान इस युद्ध में खेत रहा है, अतः रोहतास से प्रस्थान करने के पूर्व तुम शुजाअत खान से पुत्र की मृत्यु का समाचार न कहना, क्योंकि (पुत्र शोक से) अभिभूत होकर वह आने में देर कर सकता है।" शुजाअत खान को ज्यों ही शेरशाह का यह फरमान मिला उसने तत्काल प्रस्थान कर ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। कन्नौज से शेरशाह ने एक विशाल सेना सहित बरमजिदगुर को आगे भेज दिया और उसे यह आदेश दिया कि स्थिति का भली-भांति अध्ययन किए बिना सम्राट हुमायूं से युद्ध का संकट मोल न ले। उसने अपनी दूसरी सेना को नासिर खान के नेतृत्व में संभल की ओर भेज दिया और कन्नौज के आसपास के क्षेत्रों को सुव्यवस्थित करके स्वयं आगरा की ओर चल पड़ा।

हुमायूं आगरे को

आगरा पहुंचने पर हुमायूं ने अमीर सैय्यद अमीरुद्दीन से कहा कि अफगानों ने शाही सेना को नहीं हराया है, वरन उसने अफगानों की ओर से वीरों को लड़ते देखा है और उनके समक्ष शाही सेना का हारना स्वाभाविक है। यही बात सम्राट ने सरहिंद पहुंचकर वहां के सरदार मुहीबुद्दीन सरहिंदी से भी कही थी। जब हुमायूं ने शेरशाह के आगरे आने का समाचार सुना तब उसके लिए वहां रहना कठिन हो गया और

वह लाहौर की ओर चला गया। जब शेरशाह को यह समाचार मिला तो वह बरमजिदगुर से बड़ा नाखुश हुआ और उसे खूब भला-बुरा कहा। आगरा आकर वह स्वयं कुछ दिनों के लिए वहां रुक गया। परंतु बरमजिदगुर तथा खवास खान को एक विशाल सेना देकर सम्राट का पीछा करने के लिए लाहौर की ओर भेज दिया। जब शेरशाह आगरे से दिल्ली आया तो संभल नगर के अनेक कुलीन तथा प्रतिष्ठित नागरिकों ने उससे आकर निवेदन किया कि नासिर खान ने उन्हें अत्यधिक पीड़ित कर रखा है। उसके अत्याचारों से सभी लोग अत्यंत दुखी हैं। शेरशाह ने इसपर कुतुब खान से कहा कि—"हमें एक ऐसे व्यक्ति को संभल भेजना चाहिए जो वीर भी हो और साथ ही न्यायप्रिय होने के कारण प्रजा पर अत्याचार न करे, क्योंकि उस क्षेत्र में अनेक विद्रोही रहते हैं। उस प्रदेश का सरदार बहुत वीर होना चाहिए जो उन सबको नियंत्रण में रख सके।" कुतुब खान ने कहा कि ऐसा योग्य सरदार तो ईसा खान कल्कापुर है और शेरशाह ने इसे स्वीकार करते हुए कुतुब खान को ईसा खान के पास भिजवाया और यह कहलवाया कि यदि वह स्वीकार करे तो उसे वहां नियुक्त किया जा सकता है। कुतुब खान से संदेश पाकर ईसा खान ने यह कार्य सहर्ष स्वीकार कर लिया।

संभल की सरकार के अतिरिक्त शेरशाह ने ईसा खान को उसके परिवार के व्यय के लिए कंत और गोला के परगने भी दिए और उसे आदेश दिया कि वह पांच हजार अश्वारोहियों को अपनी सेना में रखे। उसने नासिर खान को भी उसका नायक बनाकर भेज दिया। संभल भेजते समय उसने ईसा खान की कार्यकुशलता से आश्वस्त होकर उससे कहा—"अब मुझे दिल्ली से लेकर लखनऊ तक के प्रदेशों की कोई चिंता नहीं रह गई है।" ईसा खान को संभल पहुंचने पर मालूम हुआ कि नासिर खान ने बरामबेग को बंदी बना लिया है। इसी बरामबेग के ही अधिकार में 'सम्राट हुमायूं की मोहरें' रहती थीं और सम्राट अकबर के समय में इसे खानखाना की पदवी भी प्रदान की गई थी। बरामबेग के इस समय संभल में रहने का कारण यह था कि जिस समय हुमायूं की सेना पराजित होकर भाग रही थी उस समय बरामबेग ने संभल के एक प्रतिष्ठित नागरिक तथा अपने एक घनिष्ठ मित्र मियां अब्दुल बहब के यहां जाकर शरण ली। नासिर खान के भय से मियां अब्दुल बहब ने उसे अपने यहां रखना उचित न समझकर लखनौर के राजा मित्रसेन को सौंप दिया। राजा ने उसे कुछ समय तक अपने राज्य के उत्तरी भाग में, जहां एक घना जंगल था छिपाकर रखा, परंतु जब नासिरबेग को यह ज्ञात हुआ कि बरामबेग मित्रसेन के आश्रय में है तो उसने राजा को अविलंब उसे सौंप देने का आदेश भेजा। नासिर खान के पत्र

को पाकर शेरशाह के भय और आतंक से राजा ने बरामबेग को सौंप दिया और उस समय नासिर खान की यह इच्छा थी कि इस बंदी को मौत के घाट उतार दिया जाए। जब मियां अब्दुल बहव को इस बात का पता लगा तो वह ईसा खान के पास गया। सुलतान सिकंदर के समय से ही ईसा खान और मियां अब्दुल बहब में घनिष्ठ मित्रता थी। अतः बहव ने ईसा खान से निवेदन किया कि आपको बरामबेग के प्राणों की रक्षा करनी चाहिए। ईसा खान ने बरामबेग को नासिर खान के यहां से मंगवा लिया, उसे अपने घर में शरण दी और उसका दैनिक व्यय निर्धारित कर दिया। उसने राजा मित्रसेन से इस बात का वचन ले लिया कि जब कभी ईसा खान शेरशाह के पास जाएगा तब बरामबेग भी उसके साथ जाएगा।[1]

बरामबेग की गिरफ्तारी और पलायन

जब शेरशाह ने मांडू और उज्जैन पर आक्रमण किया तब उसने ईसा खान को भी इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिए बुलवा भेजा। ईसा खान इस समय बरामबेग को भी अपने साथ ले आया और उसे उज्जैन में शेरशाह की सेवा में उपस्थित किया। बरामबेग को देखकर शेरशाह ने क्रोध के साथ पूछा कि अभी तक यह कहां छिपा रहा। मसनदआली ईसा खान ने उत्तर दिया कि शेखमलही कहल का घर ही अब तक इसका शरण स्थान रहा है। शेरशाह ने उसे क्षमा करते हुए कहा—"अफगानों का यह नियम रहा है कि यदि भयंकर अपराधी भी शेखमलही कहल के परिवार में शरण लेता है तो उसे क्षमा कर दिया जाता है और इसी नियम के अनुसार मैं बरामबेग को भी क्षमा करता हूं।" जब शेरशाह दरबार से उठने ही वाला था तब ईसा खान ने पुनः निवेदन किया—"आपने शेखमलही कहल के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए बरामबेग को क्षमा कर दिया है, परंतु आपकी सेवा में उसे उपस्थित करने वाले मेरा भी यह तुच्छ निवेदन है कि उसे आप एक खिलत और घोड़ा प्रदान करें तथा मोहम्मद कासिम (जिसने ग्वालियर का दुर्ग सौंप दिया है) के साथ खेमे गाड़ने की अनुमति दें। शेरशाह ने ईसा खान की प्रार्थना पर बरामबेग को कासिम के साथ रहने की अनुमति दे दी, परंतु जब शेरशाह ने उज्जैन से प्रस्थान किया तब मोहम्मद कासिम और बरामबेग गुजरात की ओर भाग खड़े हुए। मोहम्मद कासिम तो मार्ग में ही मार डाला गया, परंतु बरामबेग गुजरात पहुंच गया। गुजरात में शेखगदाई नाम का एक व्यक्ति रहता था, जिसे बरामबेग ने अत्यधिक उपकृत कर रखा था, अतः

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

उसकी सहायता से वह सम्राट हुमायूं की सेवा में जा पहुंचा।

सम्राट हुमायूं की मृत्यु के बाद बरामबेग ने शेखगदाई, शेख अब्दुल बहब और राजा मित्रसेन के इन उपकारों का स्मरण करके उनपर अत्यधिक कृपा प्रदर्शित की। उस समय मसनदेआली ईसा खान भी जीवित था और उसकी उम्र 90 वर्ष की थी। लोगों ने उसे परामर्श दिया कि उसे खानखाना (बरामबेग) की सेवा में उपस्थित होना चाहिए। परंतु मसनदेआली ने कहा—"मैं अब किसी ऐश्वर्य की उपलब्धि के लिए मुगलों की सेवा नहीं करूंगा। मसनदेआली उमर खान के वंशजों का यह स्वभाव नहीं कि वे अपने उपकारों का प्रतिफल चाहें।" मैंने (अब्बास सरवानी) मौलाना मोहम्मद बिनोर और उसके जामाता अब्दुल मोमिल (ये दोनों खानखाना बरामबेग के घनिष्ट मित्रों में से थे) से सुना है कि उन्होंने स्वयं खानखाना से यह पूछा था—"क्या मसनदेआली ईसा खान ने कभी आपके ऊपर उपकार किया है ?" बरामबेग ने इस बात को सुनकर अपनी कृतज्ञता इस प्रकार प्रकट की थी—"उसने मेरे प्राणों की रक्षा की है। यदि इस समय वह मेरे पास आए तो मैं अपना बड़ा सम्मान मानूंगा। मैं यदि उसे शेरशाह से अधिक वड़ी जागीर न दे सका तो भी मैं उसे संभल का पुराना परगना अवश्य दे दूंगा।"

तोहफते अकबर शाही नामक ग्रंथ के लेखक अब्बास सरवानी और मसनदेआली ईसा खान एक ही जाति और कबीले से संबद्ध थे। सरवानी उसके भाई के पुत्र मुजफ्फर खान का जामाता भी था। उसने अफगानों का जो इतिहास लिखा है, उसका अधिकांश भाग इसी खान आजम मुजफ्फर खान से पूछकर लिखा है। इन लोगों के पूर्वज बहुत समय से हिंदुस्तान के सरदार रहे हैं। जब सुलतान सिकंदर ने अप्रसन्न होकर ईसा खान के पिता हैबत खान को अपने यहां से निकाल दिया तब ईसा खान मांडू के राजा सुलतान महमूद के दरबार में चला गया और उसका विश्वस्त सरदार तथा मित्र बन गया। इसके बाद वह सुलतान महमूद को छोड़कर गुजरात के शासक मुजफ्फर की सेवा में जा पहुंचा तो वहां भी उसे वही विश्वस्त सरदार और मित्र का स्थान प्राप्त हुआ।

जब सुलतान महमूद ने मांडू का दुर्ग जीता था तब उसने मसनदेआली से कहा—"तुम सुलतान मुजफ्फर के पास जाकर उसे मांडू के दुर्ग को देखने का निमंत्रण दे आओ, क्योंकि यह जगह बड़ी सुंदर है।" मसनदेआली के निमंत्रण देने पर सुलतान मुजफ्फर ने कहा—"ईश्वर करे, मांडू के दुर्ग की यह विजय सुलतान महमूद के सौभाग्य का कारण बने। आज वे इसके अधिपति हैं। सर्वशक्तिमान की सत्प्रेरणा से मैंने उनकी सहायता की थी। आगामी शुक्रवार को मैं दुर्ग में आऊंगा और उनके नाम

का खुतबा पढ़कर वापस लौट जाऊंगा। ईसा खान इस शुभ समाचार को लेकर पुनः सुलतान महमूद के पास आ गया। कुछ समय बाद ईसा खान गुजरात छोड़कर सुलतान इब्राहीम की सेवा में चला गया और उसका विश्वस्त सलाहकार और मित्र बन गया। सुलतान इब्राहीम ने दिल्ली नगर की रक्षा का भार ईसा खान पर छोड़ दिया और जब सुलतान बहलोल के पुत्र अलाउद्दीन ने इस नगर पर आक्रमण किया तब ईसा खान जैसे विलक्षण सरदार के कारण ही वह उसे न ले सका और उसे बरबस वहां से पीछे हट जाना पड़ा। इसके बाद मसनदेआली ईसा खान शेरशाह के पास चला गया और वहां भी उनका विश्वस्त सरदार बन गया। दिल्ली की विजय के बाद शेरशाह ने संभल नगर मसनदेआली ईसा खान को दे दिया।

शेरशाह ने हाजी खान को मेवात का सूबेदार नियुक्त किया और स्वयं लाहौर की ओर चल पड़ा। सरहिंद पहुंचने पर उसने खवास खान को वहां का सूबेदार नियुक्त किया, परंतु खवास खान ने अपने प्रतिनिधि के रूप में अपने एक गुलाम मालिक भगवत को वहां का कार्य देखने के लिए छोड़ दिया। हुमायूं पहले ही लाहौर पहुंच चुका था। वहां पहुंचने पर उसे कुछ मुगल सैनिक मिले जो अफगानों से युद्ध करने के लिए अपने देश में आए थे और जिन्हें अभी तक अफगानों से युद्ध करने का कोई अवसर नहीं मिला था। इन सब मुगल सैनिकों ने सम्राट हुमायूं से कहा—"आप हमें युद्ध करने की अनुज्ञा दीजिए। हमारे बल और शौर्य के समक्ष इन अकिंचन अफगानों का टिकना असंभव है। युद्ध-क्षेत्र में हम इनके छक्के छुड़ा देंगे और विजय से आपका मस्तक ऊंचा करेंगे।" सम्राट हुमायूं ने उन्हें युद्ध करने की अनुज्ञा दे दी। हुमायूं का पीछा करने के लिए शेरशाह ने खवास खान तथा बरमजिदगुर के सेनापतित्व में कुछ सेनाएं भेज रखी थीं। इन अफगान सेनाओं और मुगल सैनिकों का सुलतानपुर के समीप एक युद्ध हुआ। मुगल सैनिक हार कर लाहौर की ओर भाग खड़े हुए। खवास खान सुलतानपुर रुक गया, परंतु इस समाचार को सुनकर हुमायूं और कामरान ने लाहौर भी छोड़ दिया। कुछ दिनों के बाद शेरशाह भी लाहौर आ पहुंचा, परंतु वहां रुका नहीं। लाहौर से चलने पर तीसरे पड़ाव पर उसे मालूम हुआ कि मिर्जा कामरान तो जुघ की पहाड़ियों के रास्ते काबुल की ओर प्रस्थान कर गया है और सम्राट हुमायूं सिंधु नदी के किनारे किनारे मुल्तान की ओर जा रहा है। शेरखान खुशाब पहुंचा और वहां से उसने कुतुब खान बनेट, खवास खान, हाजी खान, सरमस्त खान, जलाल खान जलोई, ईसा खान नियाजी, बरमजिदगुर को एक विशाल सेना देकर सम्राट के पीछे मुल्तान की ओर भेजा। उसने उन्हें यह आदेश दिया कि अकारण युद्ध न करें। सम्राट को हिंदुस्तान की सीमा से बाहर निकालकर वे लोग लौट आएं।

वहां से दो पड़ाव चलने पर इन अफगान सरदारों को ज्ञात हुआ कि मुगल सेना दो भागों में विभक्त हो गई है। यह सुनकर उन्हें इस बात की चिंता हुई कि शेरशाह के पास बहुत थोड़ी सेना बची हुई है। हो सकता है कि मुगल सेना की एक टुकड़ी शीघ्रता से प्रस्थान कर शेरशाह पर आक्रमण कर दे। शेरशाह के पास बहुत थोड़ी सेना है। ऐसी दशा में मुगलों का कोई भी आक्रमण संकटप्रद सिद्ध हो सकता है। अफगान सेना भी दो भागों में विभक्त हो गई। एक टुकड़ी के सेनापति खवास खान, ईसा खान और दूसरे अफगान सरदार थे। इन्होंने नदी पार की और झेलम नदी के किनारे किनारे मुल्तान की ओर बढ़े। अफगानों की दूसरी सेना कुतुब खान आदि सरदारों के नायकत्व में रही। वह नदी के इस तट के मार्ग से आगे बढ़ी। मुगलों की सेना, जो सम्राट से अलग होकर काबुल की ओर जा रही थी, खवास खान वाली अफगान सेना के सामने आ पड़ी। दोनों सेनाओं में एक बार फिर युद्ध हुआ और मुगल सेना हारकर मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। उनके नगाड़े और झंडे आदि सब सामान खवास खान के हाथ लग गए। अफगान सेना वहां से लौट पड़ी और पुनः शेरशाह से आ मिली जो कुछ समय से खुशाब में रुका हुआ था। तब इस्माइल खान, फाथ खान और गाजी खान बलूची नामक सरदार उसकी सेना में शामिल हुए। शेरशाह ने बलूचियों को आदेश दिया कि अपने घोड़ों को गरम लोहे से दागें। इसपर इस्माइल खान ने कहा—"दूसरे लोग तो अपने घोड़ों को दागेंगे, परंतु मैं अपने शरीर को गरम लोहे से दागूंगा।" शेरशाह इस बात को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उसे सिंध का सूबेदार नियुक्त किया। रोह प्रदेश के समस्त कबीलों के सरदार शेरशाह की सेवा में उपस्थित हुए और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। पितामह शेख बयाजिद काल्कापुर सरवानी, जो शेख अहमद सरवानी और अब्बास सरवानी के वंशज थे, यशस्वी व्यक्ति थे। कहा जाता है कि सारे रोह प्रदेश में उनकी इज्जत थी। अनेक अफगान उनके शिष्य और अनुगामी थे। वे अपने शौर्य और ऐश्वर्य के लिए भी प्रसिद्ध हैं। किसी भी अफगान को उनसे अधिक सम्मान उपलब्ध नहीं हुआ है और सारी अफगान जाति पर उनकी महानता की छाप लगी हुई है। उनका सारा वंश अफगानों में एक महान यशस्वी और दीप्तिमान वंश गिना जाता है। ऐसे गुणों से विभूषित शेख बयाजिद खुशाब में शेरशाह से भेंट करने आए और उनसे मिले।

पिछले कई सम्राटों ने शेख बयाजिद के प्रति सदैव अटूट श्रद्धा और सम्मान प्रकट किया था। अतः शेख इस चिंता में था कि शेरशाह भी मेरे प्रति न जाने कैसा व्यवहार करेगा। जब शेख बयाजिद शेरशाह के दरबार में आया तब शेरशाह उसके सम्मान में अपने सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और उसके स्वागत के लिए आगे बढ़ा।

उसने बड़ी नम्रता प्रकट की। शेख को आशा थी कि शेरशाह अपना हाथ बढ़ाकर मेरे प्रति आदर प्रदर्शित करेगा। परंतु उसने आलिंगन के लिए आग्रह किया। जब शेख दरबार से विदा हुआ तब भी शेरशाह ने उसका सम्मान किया। जब शेरशाह बंगाल की ओर से लौटा तो उसने शेख को रोह की ओर जाने की अनुमति दी और उसे एक लाख टका नगद, बंगाल के रेशमी वस्त्र और हिंदुस्तान के बहुमूल्य वस्त्र भेंट स्वरूप प्रदान किए। विदा होते समय शेख ने कहा–"लंगाह राजाओं के समय से ही बिलूचियों ने मेरे पूर्वजों की मुआफी की भूमि को बलपूर्वक अपने अधिकार में कर रखा है।" शेरशाह ने आदेश दिया कि इस्माइल खान बलूच को उस भूमि के बदले में सक्खर प्रदेश का निंदुना नाम का परगना दे दिया जाए और बिलूचियों द्वारा अधिकृत की गई समस्त भूति को पुनः शेख बयाजिद को दे दिया जाए। इस्माइल खान शेरशाह के आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता था, अतः उसने निंदुना परगना और सक्खर के गांव लेना स्वीकार कर लिया और शेख बयाजिद को अपने पूर्वजों की भूमि पुनः प्राप्त हो गई। जिस समय शेरशाह ने उज्जैन और सारंगपुर पर आक्रमण किया था उस समय भी शेख बयाजिद दूसरी बार उससे भेंट करने आया था। शेरशाह ने शेख को बटनुर परगने में दो हजार बीघा भूमि प्रदान की। यह भूमि शेखों के पूर्वजों की थी। उसने यह भी निश्चित कर दिया कि शेख जब कभी शेरशाह से भेंट करने आएगा तब उसे एक लाख टका दिया जाएगा। उसने यह भी वचन दिया कि कालिंजर के विजय के बाद शेख को बिलूचियों के देश के सिंध और मुल्तान का परगना भी दे दिया जाएगा।

शेख बयाजिद की मृत्यु के बाद उसके पुत्र अली रोह प्रदेश के उन भूभागों के स्वामी बने। वे भी इस्लाम खान से भेंट करने गए और इस्लाम खान ने उनके प्रति विशेष सम्मान प्रकट किया। उसने शेख अली को अपने पूर्वजों की भूमि का स्वामी स्वीकार कर लिया। सम्राट अकबर के शासन काल में यह भूमि शेखअली के पुत्र अब्बास सरवानी को मिली। इलाही सन 24 में (हिजरी 987) सम्राट ने आदेश दिया कि अब्बास को 500 सवार का मनसबदार बना दिया गया है। सम्राट ने अब्बास को बुलाया है। उसके दरबार में पहुंचने पर काजी अली ने उसका ठीक परिचय नहीं दिया। उसने उनकी बुराई करते हुए कहा–"शेख अब्दुल नबी ने 2000 बीघा भूमि दो अफगानों को दे दी है।" उसपर सरवर खानदान से सारी भूमि (मदद माश) छीन ली गई।

9. सफलता पर सफलता

रोह प्रदेश से आनेवाले अपने अनेक संबंधियों को शेरशाह ने आशातीत धन और जायदाद प्रदान की। सारंग धक्कर ने शेरशाह की सेवा में आकर अधीनता स्वीकार न की, शेरशाह ने अपनी सारी सेना को लेकर उसके विरुद्ध प्रयाण कर दिया। उसने पद्मा और गर्जक की सारी पहाड़ियों में होकर यात्रा की, क्योंकि वह एक ऐसा उचित स्थान खोजना चाहता था जहां पर एक सुदृढ़ दुर्ग बनाया जा सके। उस दुर्ग में अपनी कुछ सैनिक टुकड़ियों को रखकर धक्करों को पूर्णतः पराभूत करने की उसकी योजना थी। इसी दुर्ग से वह काबुल के मार्ग को भी नियंत्रित करना चाहता था। इसके लिए उसने रोहतास नामक स्थान को चुनकर वहां एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया और वहां से धक्करों के देश को उजाड़ना प्रारंभ किया। उसने अनेक धक्करों को बंदी बना लिया और सारंग धक्कर की लड़की को पकड़कर उसे खवास खान को दे दिया।

इसी बीच बंगाल से यह सूचना मिली कि बंगाल के सूबेदार खिज्र खान वैरक ने बंगाल के स्वर्गीय राजा सुलतान महमूद की कन्या से विवाह कर लिया है। उसने पुराने राजाओं के ढंग से 'तोकी', अर्थात उच्चासन पर बैठने का भी दुस्साहस किया है। शेरशाह उसके इस आचरण से अत्यंत कुपित हुआ। इस नीच कर्म का उचित दंड देने के लिए शेरशाह ने स्वयं मार्च 1541 ई. में बंगाल की ओर प्रस्थान किया और हैबत खान नियाजी, खवास खान, ईसा खान नियाजी, हबीब खान, राय हुसैन जलवानी को एक विशाल सेना के साथ रोहतास के दुर्ग में ही छोड़ दिया। शेरशाह के बंगाल पहुंचने पर खिज्र खान वैरक स्वागत के लिए आगे आया और शाही ढंग से उसका आदर-सत्कार किया, परंतु इस कार्य से शेरशाह का क्रोध शांत नहीं हुआ और उसने कहा—"मेरी आज्ञा के बिना तुमने सुलतान महमूद की कन्या से विवाह करने की धृष्टता क्यों की है और राजाओं की 'तोकी' पर बैठकर मेरी आज्ञा का उल्लंघन क्यों किया है ? राज्य के किसी भी सरदार के लिए यह उचित नहीं है कि वह मेरी अनुमति के बिना इस प्रकार का व्यवहार करे।" खिज्र खान के क्षमा मांगने

पर भी शेरशाह ने उसे कठोर दंड देने तथा बंदी बनाने का आदेश दिया जिससे राज्य का कोई सरदार इस प्रकार अनुचित व्यवहार न कर सके। उसने बंगाल के राज्य को कई सूबों में बांट दिया और काजी फजीलत को, जो 'काजी फजीहत' के नाम से अधिक प्रसिद्ध था, वहां का अमीर बना दिया। बंगाल की यह व्यवस्था करने के बाद वह स्वयं आगरा लौट आया।

शेरखान के आगरा लौटने पर उसे शुजाअत खान का एक पत्र मिला। इस पत्र में शुजाअत ने उन शर्तों का उल्लेख किया था जिनके अनुसार मुहम्मद कासिम द्वारा ग्वालियर के दुर्ग को समर्पित करना था। इसके अनुसार अफगानों को दुर्ग में प्रविष्ट होने की अनुमति दे दी गई थी। मुगलों के लिए भी शेरशाह के खेमे तक पहुंचने की आज्ञा मांगी गई थी। शेरशाह के ग्वालियर पहुंचने पर मुहम्मद कासिम का उसकी सेवा में पेश करना था और तब वह शेरशाह के सूबेदारों को ग्वालियर को दुर्ग समर्पित कर देना। शेरशाह ने इन शर्तों से आश्वस्त होकर अपने सेनापतियों को आदेश दिया कि अब अफगान सेनाएं ग्वालियर के रास्ते से मांडू की ओर प्रस्थान करेंगी। गुजरात और मांडू प्रदेश के राजाओं ने जैसा पहले कहा जा चुका है, शेरशाह के पुत्र कुतुब खान की सहायता नहीं की थी और उस समय युद्ध में पराजित होकर उसकी मृत्यु हो गई थी। शेरशाह उन राजाओं से बदला लेने का उपयुक्त अवसर खोज रहा था। यह ऐसा समय था कि वह ग्वालियर को हस्तगत करके इन राजाओं से भी बदला ले सकता था। उस समय मांडू के प्रदेश में कई राजा लोग शासन कर रहे थे। शद्राबाद अर्थात मांडू के दुर्ग, उज्जैन, सारंगपुर तथा रणथंभौर पर मल्लू खान का शासन था। इस मल्लू खान ने कादिरशाह की उपाधि धारण कर रखी थी। देवास और भिंडिया में सिकंदर खान मियां का शासन था। चंदेरी और रायसेन में भूपतशाह के पुत्र राजा प्रतापशाह का राज्य था। उस समय प्रतापशाह अल्पवयस्क था और उसका मंत्री भइया पूरणमल ही राज्य का सारा काम करता था। भोपाल पर (जिसमें बीजागढ़ और तम्हा के प्रदेश भी सम्मिलित थे) महेश्वर का आधिपत्य था। जब शेरशाह ग्वालियर पहुंचा[1] तब हुमायूं का एक सरदार मुहम्मद कासिम (जो उस दुर्ग का अधिपति था) दुर्ग से बाहर आया और उसने शेरशाह के प्रति सम्मान प्रकट किया। उसने अपने पूर्व वचनों के अनुसार दुर्ग, शाही सूबेदारों को समर्पित कर दिया। जब शेरशाह गागरौन पहुंचा तब शुजाअत खान ने ग्वालियर के राजा

1. तारीखे खान जहान (पृ. 178) के अनुसार शेरशाह ने हिजरी सन 949 में ग्वालियर और मालवा की ओर प्रस्थान किया था।

रामशाह को आदेश दिया कि रायसेन के भइया पूरणमल को शेरशाह की सेवा में ले आओ। पूरणमल ने रामशाह से यह संदेश भिजवाया कि मैं शुजाअत खान के यहां आने पर ही उसके साथ शेरशाह के दरबार में जा सकता हूं। तदनुसार शुजाअत खान स्वयं रायसेन गया और पूरणमल को शेरशाह की सेवा में ले आया। पूरणमल के रायसेन से प्रस्थान करते समय उसकी पत्नी रत्नावली ने (जिसे पूरणमल बहुत प्यार करता था) शुजाअत खान के पास यह संदेश भिजवाया—"जब तक मेरा पति वापिस नहीं लौटेगा तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी। उनके पुनः दर्शन कर लेने पर ही मुझे संतोष होगा। जब तक वे लौटकर नहीं आएंगे तब तक मैं दुर्ग के झरोखे पर बैठी हुई बराबर उनकी प्रतीक्षा करती रहूंगी।" शुजाअत खान ने उसे कहलवा भेजा कि आपको प्रसन्न रहना चाहिए क्योंकि पूरणमल कल लौट आएंगे। शुजाअत खान ने पूरणमल को 6000 अश्वारोहियों सहित शेरखान के दरबार में प्रस्तुत किया। उन अश्वारोहियों में कोई भी 40 से अधिक की अवस्था वाला नहीं था। शेरशाह इससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पूरणमल को 100 घोड़े और 100 बहुमूल्य वस्त्र प्रदान कर गौरवान्वित किया। उसने उसे उसी दिन लौट जाने की अनुमति दे दी। भइया पूरणमल तो रायसेन चला गया, परंतु वह शेरशाह की सेवा में अपने छोटे भाई चतुरभुज को रख गया।

जब शेरशाह सारंगपुर पहुंचा तो मल्लू खान का प्रतिनिधि उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और स्वामिभक्ति प्रकट की। उसने यह भी सूचित किया कि मल्लू खान स्वयं आपकी सेवा में आ रहा है। इस समाचार को सुनकर शेरशाह ने शुजाअत खान को आदेश दिया कि आगे जाकर मल्लू खान का स्वागत करो। शुजाअत खान के जाने पर शेरशाह अपने खेमे से बाहर निकल आया। उसने बाहर दरबार किया और अपने समस्त सेनापतियों को उचित आसन पर बैठाया। शुजाअत खान, मल्लू खान को लेकर जब दरबार में आया तो शेरशाह ने पूछा कि मल्लू खान के खेमे कहां गड़वाए गए हैं ? इस बात को सुनकर मल्लू खान ने कहा—"आपकी सेवा में मैं अकेला ही आया हूं। अब मेरा कोई खेमा अथवा स्थान नहीं है। मेरा एक मात्र स्थान अब आपके दरबार में ही है। मेरी यह प्रार्थना है कि मुझे यहां पर कुछ सेवा का कार्य दिया जाए और मैंने अपने लिए दरबार में झाड़ू देनेवाले का कार्य चुना है।" शुजाअत खान ने कहा कि मल्लू खान अपने साथ 20 अश्वारोही ले आया है। इसपर शेरशाह ने आदेश दिया कि इसे लाल रंग का खेमा, बहुमूल्य शय्या, एक वितान और अन्य सुविधा की वस्तुएं प्रदान की जाएं। शाही ढंग से इसका सत्कार किया जाना चाहिए। शेरशाह ने जब सारंगपुर से प्रस्थान किया तो उसने अपनी

सारी सेना मल्लू खान को दिखाई। मल्लू खान इस सेना को देखकर आश्चर्यचकित हो गया क्योंकि उसने ऐसी सेना अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखी थी। 'वाकियात मुश्तकी' तथा 'तारीखे दाउदी' ने शेरशाह की इस सैन्य-व्यवस्था का बड़ा सुंदर वर्णन किया है। ज्योंही सारी सेना को शेरशाह का छत्र दिखाई दिया सेना की एक टुकड़ी दौड़कर उसके सामने आई। समस्त सैनिकों ने अपनी म्यानों से तलवारें निकालीं और अपने घोड़ों से उतरकर अपने स्वामी के प्रति सम्मान प्रकट किया। युद्ध के प्रारंभिक दिनों में भी उसकी सेना इसी प्रकार सम्मान प्रकट किया करती थी। प्रत्येक सैनिक टुकड़ी ने क्रमशः इसी प्रकार सम्राट के सामने आकर सम्मान प्रकट किया था। इसी दृश्य को देखकर मल्लू खान आश्चर्य में पड़ गया था। सारंगपुर और उज्जैन के बीच में एक दिन शेरशाह और मल्लू खान साथ साथ यात्रा कर रहे थे। शेरशाह ने उस समय मल्लू खान को जीवन की एक घटना सुनाई। उसने कहा कि—"अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में मैंने कठोर परिश्रम किया है। उन दिनों मैं प्रतिदिन अपना धनुष बाण लेकर 15 कोस तक पैदल ही शिकार के लिए जाया करता था। इस मृगया-प्रसंग में एक दिन मैं डाकुओं के एक दल में पड़ गया। मैं उस दल में सम्मिलित हो गया और उनके साथ प्रतिदिन उस प्रदेश को उजाड़ने और लूटने में सहयोग देने लगा। एक दिन अपने इन नए साथियों के साथ मैं नाव से नदी पार कर रहा था, उसी समय शत्रुओं के एक दल ने इनपर आक्रमण किया और दोनों दलों में भीषण मुठभेड़ हुई। अंत में डाकुओं सहित मेरा दल पराजित हुआ। मैं निराश अवस्था में अपने धनुष और तरकश को अपने सिर पर रखकर नदी में कूद पड़ा और तीन कोस तक तैरकर अपने प्राणों की रक्षा की। उस समय के बाद मैंने इस लूटमार के काम को छोड़ दिया।"[1]

शेरशाह की सेना पड़ाव पर खाइयां आदि खोदकर अपनी सुरक्षा का समुचित प्रबंध करती थी। जब मल्लू खान ने सैनिकों के इस परिश्रम और लगन तथा शेरशाह के कठोर अनुशासन को देखा तो उसने अफगानों से कहा—"आप लोग अहर्निश परिश्रम करते हैं। आप लोगों के कष्ट-भोग और सहिष्णुता को देखकर मुझे आश्चर्य होता है। विश्राम करना तो आप लोगों ने सीखा ही नहीं। हर सैनिक का यह कर्तव्य है कि उसका स्वामी जो भी आदेश दे उसे सहर्ष स्वीकार करे। वह अपने सैनिकों

---

1. वाकियाते मुश्तकी (पृ. 103) और तारीखे दाउदी (पृ. 256)। अबुल फजल तथा अन्य दरबारी मुगल-इतिहास लेखकों ने अपने ग्रंथों में सदैव इस बात पर बल दिया है कि शेरशाह का प्रारंभिक जीवन लूट-खसोट और दुराचार से पूर्ण था।

से जिस परिश्रम की अपेक्षा रखे, सैनिक उसे भार न समझकर अपना पवित्र धर्म मानते हुए उसका निर्वाह करें, क्योंकि आराम और विश्राम स्त्रियों का दाय है तथा सम्मानित पुरुषों के लिए विश्राम करना लज्जा का विषय है।" शेरशाह ने मल्लू खान की स्वामिभक्ति और नम्रता को देखकर उसे क्षमा कर दिया और कालपी की सरकार उसे प्रदान कर दी।

उज्जैन पहुंचकर शेरशाह ने कालीदह के समीप अपना पड़ाव डाल दिया। वहां सिकंदर खान मियां शेरशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और अपनी स्वामिभक्ति प्रकट की। अब मांडू का प्रदेश शुजाअत खान को दे दिया गया।

जब शेरशाह के पड़ाव उज्जैन में पड़े हुए थे तब मल्लू खान ने वहां से निकल भागने की एक योजना बनाई। वह अपने परिवार को उज्जैन के बाहर ले आया। उसने सोचा कि शेरशाह के साथ रहने पर मुझे जो परिश्रम और लगन दिखानी पड़ेगी वह मैं न दिखा सकूंगा। अतः किसी बहाने से शेरशाह के पड़ाव को छोड़कर भाग खड़ा होना श्रेयस्कर होगा। परंतु शेरशाह अत्यंत चतुर राजा था और वह इस बात को भांप गया। उसने तुरंत शुजाअत खान को बुलवाया और उसे आदेश दिया कि अविलंब मल्लू खान को बंदी बना लिया जाए। शुजाअत खान ने जब मल्लू खान की तरफ देखा तो मल्लू खान इस बात को जान गया और कहने लगा कि शेरशाह से जाकर मेरी ओर से निवेदन करो कि मेरे पास तो अपने परिवार को कालपी तक ले जाने के लिए कोई सवारी आदि का प्रबंध भी नहीं है। जब शुजाअत खान ने यह बात शेरशाह से कही तो उसने आदेश दिया कि 100 ऊंट, 100 खच्चर, अनेक गाड़ियां तथा उनके चालक मल्लू खान के परिवार को ले जाने के लिए प्रदान किए जाएं। मल्लू खान के पास जब यह सब सामान पहुंचा तब उसने बाह्यतः इस सबका अभिनंदन किया, इन सबको शराब पिलाई। यह शराब इतनी अधिक मात्रा में पिलाई गई थी कि रात्रि को ये सब लोग संज्ञाशून्य हो गए। मल्लू खान ने इस अवसर से लाभ उठाया और अपने कोष तथा परिवार को साथ लेकर भाग खड़ा हुआ। प्रातःकाल होने पर मल्लू खान के पलायन का समाचार जब शेरशाह को ज्ञात हुआ तो उसने क्रुद्ध होकर कहा कि मल्लू खान ने वस्तुतः गुलामों जैसा ही व्यवहार किया है। शेरशाह अपने सूबेदार शुजाअत खान से भी बहुत अप्रसन्न हुआ, क्योंकि उसी की असावधानी से लाभ उठाकर मल्लू खान भागा था। उसने उससे कहा—"अब जहां कहीं मल्लू खान हो, तुम स्वयं उसे पकड़कर मेरे पास ले आओ। क्या मैंने तुमसे पहले ही यह नहीं कहा था कि इसके ऊपर विश्वास नहीं करना चाहिए और इसे तत्काल बंदी बना लिया जाना चाहिए। परंतु तुमने मेरे आदेश का कोई पालन नहीं किया और

असावधानी से काम लिया।" शुजाअत खान तुरंत मल्लू खान का पीछा करने के लिए चल पड़ा परंतु वह उसे न पकड़ सका, क्योंकि मल्लू खान वहां से भागकर गुजरात के शासक सुलतान महमूद के पास चला गया। निराश होकर शुजाअत खान को मांडू की सीमा से वापिस आना पड़ा। शेरशाह शुजाअत खान के इस व्यवहार से अत्यंत कुपित था, अतः उसने उससे मांडू का प्रदेश, जो पहले उसे दे दिया गया था, वापिस ले लिया और उसके स्थान पर उसे सेवास, हिंडिया आदि के प्रदेश के दिए जो पहले सिकंदर खान मियां के अधिकार में थे। शुजाअत खान को यह भी आदेश दिया गया कि वह 4000 अश्वारोही रखे। उज्जैन का प्रदेश दरिया खान गुजराती को दिया गया। यह दरिया खान गुजराती गुजरात के शासक सुलतान महमूद का वजीर था और यह भागकर शेरशाह की सेवा में आ उपस्थित हुआ था। सारंगपुर का प्रदेश सुलतान महमूद के दूसरे प्रसिद्ध सरदार आलम खान लोदी को दिया गया। उसने हाजी खान और जुनैद खान को उस प्रदेश का फौजदार नियुक्त किया और उनको धार नामक नगर में छोड़कर वह रणथंभौर दुर्ग के मार्ग से लौट पड़ा। शेरशाह के इस प्रत्यावर्तन के समय रणथंभौर पहुंचने से पहले ही सेवास सरकार का शासक सिकंदर खान मियां मार्ग ही में भाग खड़ा हुआ। उस समय रणथंभौर में मल्लू खान का एक सूबेदार उस्मान खान शासन कर रहा था जिसका नाम पहले अबुल फर्रा था। जब उसने शेरशाह के आगमन का समाचार सुना तब वह दुर्ग से बाहर आ गया और अपनी स्वामिभक्ति प्रकट की। शेरशाह ने उससे दुर्ग लेकर अपने ज्येष्ठ पुत्र आदिल खान को दुर्ग दे दिया और स्वयं सन 1542 ई. के जून माह में आगरा लौट आया।

जब शेरशाह समस्त व्यवस्था करने के बाद मांडू से आगरा की ओर लौट आया तब सिकंदर खान मियां के भाई नासिर खान ने 6000 अश्वारोहियों और 200 हाथियों की एक सेना लेकर शुजाअत खान के विरुद्ध आक्रमण कर दिया। शुजाअत खान के पास उस समय केवल 2000 अश्वारोहियों की सेना थी। नासिर खान ने अपने सेनापतियों और योद्धाओं को आदेश दिया कि—"शुजाअत खान को जीवित बंदी बना लो, क्योंकि शेरशाह ने मेरे भाई सिकंदर खान को अपने पास रोक रखा है। मैं इसे शत्रु की प्रतिमूर्ति के रूप में अपने पास रखूंगा। जब शेरशाह मेरे भाई को छोड़ देगा तब मैं भी शुजाअत खान को छोड़ दूंगा।" जब शुजाअत खान को नासिर खान के इस आक्रमण का समाचार मिला तब वह आगे बढ़ गया और इन दोनों सेनाओं में नीलगढ़ के समीप युद्ध हुआ। युद्ध प्रारंभ होने पर दोनों सेनाओं के अनेक सैनिक भाग खड़े हुए। इस युद्ध में नासिर खान के तीन वीर सैनिकों ने केवल शुजाअत खान पर ही आक्रमण करने की शपथ ली थी। वे तीन व्यक्ति थे

मियां उमर, सय्यद ताहिर और कोका। इनमें से एक ने अपनी कृपाण से शुजाअत खान की गर्दन पर वार किया। दूसरे ने उसपर इस वेग से भाले का प्रहार किया कि उसका एक नथुना छिद गया तथा सामने के दांत टूट गए। तीसरे ने कृपाण का वार करके उसके बाल पकड़ लिए और उसे जीवित नासिर खान के पास ले जाने लगा। उसी समय शुजाअत खान ने अपनी कृपाण से इस तृतीय व्यक्ति पर प्रहार किया जिससे उसका हाथ कट गया और इस तरह शुजाअत खान उसके पंजे से छूट गया। शुजाअत खान के एक दूसरे अनुयायी जहर खान ने (जो शुजाअत खान का सजातीय था) दूसरे आक्रमणकारी को अपने प्रहार से मौत के घाट उतार दिया और मुबारक खान शिरीनी ने तृतीय आक्रामक को समाप्त कर दिया। इस प्रकार शुजाअत खान के प्राणों की रक्षा हुई और उसने पुनः साहस करके अपनी सेनाओं को एकत्र कर उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित किया। अपने स्वामी की प्रेरणा और चेतावनी से शुजाअत खान के भागते हुए सैनिक पुनः लौट आए। वे उसके चारों ओर एकत्र हो गए और इस वीरता से युद्ध में उतरे कि विजयश्री ने उनका वरण किया। नासिर खान की सेनाओं का अब साहस टूट चुका था। स्वयं नासिर खान युद्ध के मैदान से भाग खड़ा हुआ और उसके 200 हाथी शुजाअत खान के हाथ लगे। शुजाअत खान विजयी हुआ तथा नीलगढ़ हिंडिया लौट आया।

इसके बाद शुजाअत खान को समाचार मिला कि मल्लू खान एक विशाल सेना लेकर युद्ध के लिए चला आ रहा है। उसने हाजी खान को घेर लिया है और हाजी खान मांडू के दुर्ग में अपनी सुरक्षा का प्रबंध कर रहा है यद्यपि इस समय शुजाअत खान के घाव भर नहीं पाए थे, तथापि उसने 200 हाथियों को लेकर तत्काल हाजी खान की सहायता के लिए प्रयाण कर दिया और मांडू के दुर्ग के बाहर जाकर डेरे डाल दिए। दूसरे ही दिन प्रातःकाल मल्लू खान और शुजाअत खान की सेनाएं, जो युद्ध के लिए पहले से सन्नद्ध थीं, एक-दूसरी से भिड़ गईं। इस युद्ध में अफगान सेना ने अनुपम पराक्रम और शौर्य का परिचय दिया और उनके इस साहस के फलस्वरूप उन्हें विजय प्राप्त हुई और मल्लू खान गुजरात की ओर भाग खड़ा हुआ। जब शेरशाह को इस विजय का समाचार मिला तब उसने हाजी खान को अपने दरबार में बुलाया और उसे 12,000 अश्वारोहियों का नायकत्त्व देकर गौरवान्वित किया। उसने शुजाअत खान से प्रसन्न होकर उसे उज्जैन, मांडू, सारंगपुर तथा मंसूर जागीर के रूप में प्रदान किए। सेवास के प्रदेश शुजाअत खान के शम्स खान, बिहार खान और मीर खान नियाजी नामक संबंधियों को दिए गए और इस प्रकार अब शुजाअत खान को मांडू के पूरे प्रदेश का शासक बना दिया गया।

10. बंगाल से वापसी

आगरा से शेरशाह ने बिहार और बंगाल की ओर प्रस्थान किया। परंतु वहां वह मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो गया। इस रुग्णावस्था में वहां वह प्रायः कहा करता था—"मैंने बंगाल की ओर आकर एक भयंकर भूल की है। यदि ईश्वर की अनुकंपा से मैं अब की बार स्वस्थ हो सका तो मैं शीघ्र ही राजधानी की ओर चला जाऊंगा। पूरणमल ने चंदेरी में अनेक मुसलमान परिवारों को बंदी बना रखा है। उसने मुसलमान लड़कियों को नर्तकियां बना रखा है, अतः जाते ही सर्वप्रथम मैं उसे ऐसा कठोर दंड दूंगा कि दूसरों के हृदय में आतंक बैठ जाए और आगे से कोई भी काफिर राजा मुसलमान परिवारों को पीड़ित न कर सके।" शेरशाह इस ज्वर से मुक्त होकर शीघ्र ही आगरा लौट आया। आगरा लौट आने पर उसने संपूर्ण शाही-सज्जा के साथ मांडू के प्रदेश की ओर प्रस्थान कर दिया और हिजरी सन 950 में रायसेन के दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसने अपने आज्ञाकारी पुत्र जलाल खान को आदेश दिया कि वह अपनी विजयिनी सेना को लेकर आगे प्रस्थान कर दे। जब जलाल खान भेलसा के समीप पहुंचा तो वहां शेरशाह भी उससे आ मिला। वहां से दोनों की सेनाएं शीघ्रता से प्रयाण करती हुई रायसेन के दुर्ग के समीप जा पहुंची। भइया पूरणमल ने दुर्ग से 600 हाथी बाहर भेजे, परंतु वह स्वयं दुर्ग से बाहर नहीं आया। शेरशाह ने दुर्ग का घेरा डाल दिया था। परंतु उसी समय खवास खान के पास से एक सूचना प्राप्त हुई कि हैबत खान और उनके बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। उसने यह भी प्रार्थना की कि उन दोनों के लिए दो प्रतिनिधि भेज दिए जाएं। इस प्रार्थना के अनुसार शेरशाह ने ईसा खान और हबीब खान को भेज दिया। उसने हैबत खान को पंजाब का शासक नियुक्त किया। शेरशाह ने यह कार्य एक विशेष उद्देश्य से किया था। इस प्रदेश में फाथ खान जाट नाम का एक अत्यंत विद्रोही सरदार रहता था। मुगलों के समय में ही उसने सारे प्रदेश को लूटा था और पानीपत[1] तक के सारे क्षेत्र को

---

1. मखजने अफगाना (पृ. 242) में, इस विषय का वर्णन किया गया है, वह बड़ा दुर्बोध है और डा. डॉर्न के अनुवाद से ही वह स्पष्ट नहीं हो सका है। तारीखे जहान लोदी ने भी इस घटना का विशेष उल्लेख नहीं किया है।

उजाड़ दिया था। इस समय भी उसने 'कयूला' में विद्रोह का झंडा खड़ा कर रखा था। उधर मुलतान पर बिलूचियों ने अपना अधिकार कर रखा था। अतः शेरशाह ने हैबत खान को पंजाब का शासक नियुक्त करके उसे आदेश दिया कि इस सारे प्रदेश के विद्रोहियों को समूल नष्ट कर वह मुलतान को पुनः समृद्धिशाली बनाने का प्रयत्न करे। शेरशाह का फरमान ज्योंही हैबत खान के पास पहुंचा, उसने सतगढ़ के तत्कालीन शासक चकर रिंद के वकील से कहा—"आप आगे जाकर चकर रिंद को सूचित कीजिए कि मैं शीघ्र ही अपनी सेनाएं लेकर उसके प्रदेश में आ रहा हूं। उसे मेरी सहायता के लिए अपनी सेनाओं को तैयार रखना चाहिए। क्योंकि मैंने पहला को अधिकृत करने का निश्चय कर लिया है।"

दूसरे दिन प्रातःकाल ही चकर रिंद को यह सूचना मिली कि हैबत खान सेना सहित आ पहुंचा है। चकर रिंद अपने नगर से बाहर निकल आया और उसने उसका भव्य स्वागत किया, परंतु वह बड़े आतंक की स्थिति में था। ज्योंही हैबत खान ने चकर रिंद को देखा, वह कहने लगा—"मैं तुम्हारे सैनिकों को दीपलपुर ले जाऊंगा, क्योंकि यदि मैंने देर की तो फाथ खान भाग खड़ा हो सकता है।" दो दिन में हैबत खान कुतुब आलम शेख फरीद के पत्तन जा पहुंचे। परंतु ज्योंही फाथ खान ने उसके आगमन का समाचार सुना, वह भाग खड़ा हुआ और हैबत खान ने उसका पीछा करना प्रारंभ किया। फाथ खान भागते समय अपनी स्त्रियों और परिवार के सदस्यों को भी साथ ही लिए हुए था। उसने यह अनुभव किया कि इन सबको लेकर रक्षा कर पाना दुष्कर है। अतः करोर और फाथपुर के समीप जो एक मिट्टी का दुर्ग था,[1] उसमें शरण लेना ही उसने उचित समझा। उसने बलपूर्वक उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया और अपने परिवार को उसमें शरण दे दी। हैबत खान ने जो निरंतर उसका पीछा कर रहा था, आकर उस दुर्ग को घेर लिया। कुछ दिनों तक फाथ खान दुर्ग की रक्षा करता रहा, परंतु रसद के अभाव के कारण उसे संधि-वार्ता के लिए विवश होना पड़ा। कुतुब आलम शेख फरीद के पुत्र शेख इब्राहीम को हैबत खान ने कहा—"मैं शेरशाह का एक तुच्छ सेवक हूं। मेरा स्वामी जो मुझे आदेश देगा, उसका मुझे अक्षरशः पालन करना होगा।" उसने (हैबत खान ने) फाथ खान को बंदी बना लिया। रात्रि में हिंदू बिलूच अपने 300 सैनिकों को लेकर दुर्ग के बाहर आया और आक्रमणकारियों पर भयंकर प्रहार करना शुरू किया। फलस्वरूप उसके समस्त सैनिक भाग खड़े हुए। प्रातःकाल होने पर अफगानों ने दुर्ग को अधिकृत कर लिया। बिलूची लोग दुर्ग की सुंदर स्त्रियों को

1. करोर और फाथपुर सतलज नदी से क्रमशः साढ़े सात मील तथा सवा पांच मील उत्तर में स्थित है।

पहले ही मार चुके थे। अतः अफगानों के हाथ केवल वृद्ध तथा कुरूप स्त्रियां ही लगीं, जो वंदी (गुलाम) बना ली गईं। हिंदू बिलूच तथा बक्शूलंगा नामक सरदार भी वंदी बना लिए गए। इसके बाद हैबत खान मुलतान पहुंचा जिसे बिलूचियों ने पूर्णतः उजाड़ रखा था। हैबत खान ने वहां शांति स्थापित कर उसे पुनः समृद्ध करने तथा बसाने का प्रयत्न किया। उस नगर के समस्त निवासी अपने अपने घरों को लौट आए। इसके बाद हैबत खान ने मुलतान की इस दशा को सूचित करते हुए तथा फाथ खान को बंदी बना लिए जाने की सूचना देते हुए शेरशाह को पत्र लिखे। उसने यह भी समाचार भिजवाया कि साथ ही हिंदू बिलूच तथा बक्शूलंगा को भी पकड़ लिया गया है। शेरशाह हैबत खान के इन कार्यों से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने हैबत खान को मसनदेआली बना दिया तथा उसे आजम हुमायूं की उपाधि से भी गौरवान्वित किया। उसने उसके पास यह भी आदेश भिजवाया कि मुलतान को पुनः अच्छी तरह बसाया जाए, वहां लंगाओं की ही शासन पद्धति को अपनाया जाए, भूमि को न नापा जाए वरन उपज का कुछ अंश ही कर के रूप में लिया जाए। फाथ खान और हिंदू बिलूच को तलवार के घाट उतार दिया जाए। बक्शूलंगा अथवा उसके पुत्र के प्राण तो न लिए जाएं, परंतु उन्हें सदैव हैबत खान अपने साथ रखे और उन्हें उनके क्षेत्र पुनः वापिस दे दिए जाएं। उसने हैबत खान के पास पुरस्कार रूप में एक सुंदर लाल खेमा भी भिजवाया। शेरशाह का यह आदेश आजम हुमायूं (हैबत खान) को मुलतान में मिला। उसने फाथ जंग खान को वहीं छोड़ा और स्वयं लाहौर चला आया। लाहौर में उसने फाथ खान और हिंदू बिलूच को मौत के घाट उतरवा दिया। फाथ जंग खान ने मुलतान को पुनः इस उदारता से बसवाया कि उसकी समृद्धि और वैभव लंगाओं के समय से भी अधिक हो गया। उसने मुलतान के प्रदेश में एक नया नगर भी बसाया और उसका नाम शेरगढ़ रखा।[1]

जब शेरशाह ने रायसेन के दुर्ग पर घेरा डाल रखा था तब उसने अपने समस्त सैनिकों को आदेश दिया कि कोई भी दुर्ग पर आक्रमण न करे और न दुर्ग के समीप जाए, क्योंकि वह अपने बुद्धि वैभव और राजनीतिक चालों से ही दुर्ग को अधिकृत करना चाहता है। एक दिन शेरशाह की सेना में अफगानों के कुछ अनुयायी और गुलाम लोग आपस में वार्तालाप कर रहे थे। वहां भइया पूरणमल के सिपाहियों में शौर्य और वीरता का प्रसंग उठ खड़ा हुआ और वहां बैठे हुए सैनिकों ने कहा कि–"इन गुणों में भइया पूरणमल के सैनिकों का सादृश्य कोई नहीं कर सकता। भइया पूरणमल

1. अब्बास सरवानी–मु. पो. पृ. 220-221

के सैनिक प्रतिनिधि दुर्ग से बाहर आकर यह चुनौती देते हैं कि शेरशाह का कोई भी सैनिक हमसे युद्ध करने का साहस नही कर सकता। इन सैनिकों के भय के कारण ही कोई भी अफगान सैनिक दुर्ग के समीप तक भी नहीं जाता है और न इनका सामना ही करता है।" जब अफगान सैनिकों ने इस वार्तालाप पर विचार किया तब उन्होंने इसे अपने लिए बड़ा अपमानजनक समझा। वे इस अपमानजनक प्रसंग को सहन न कर सके और कहने लगे—"चाहे शेरशाह हमें मृत्युदंड ही क्यों न दे अथवा वह हमें अपने राज्य से ही क्यों न निकलवा दे, हम अवश्य ही भइया पूरणमल के सैनिकों से एक मुठभेड़ करेंगे और उनके शौर्य तथा वीरता की परीक्षा करेंगे। हमें इस कार्य में शेरशाह के क्रोध की भी परवाह नहीं है।"

दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही 1500 अफगान अश्वारोही एक निश्चित स्थान पर एकत्र हुए। वे लोग युद्ध करने के लिए सन्नद्ध थे। उन्होंने पूरणमल के पास यह संदेश भिजवाया—"आपके सैनिक प्रतिदिन अपनी वीरता की बहुत डींग हांका करते हैं। हम 1500 अफगान सैनिक शेरशाह के आदेश की परवाह न करके, आपके सैनिकों से युद्ध करने के लिए एकत्र हुए हैं। आज हम इस बात की परीक्षा करना चाहते हैं कि राजपूतों और अफगानों में किसका शौर्य अधिक है। अतः आप भी अपने सैनिकों को एकत्र करके युद्ध के लिए दुर्ग से बाहर आइए।" भइया पूरणमल को अपने सैनिकों के साहस और वीरता पर अत्यधिक विश्वास था। वह अफगानों को शौर्य में कम समझता था। अतः उसने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया और अपनी सेना के चुने हुए सैनिकों को युद्ध के लिए दुर्ग से बाहर भेज दिया। युद्ध देखने के लिए वह स्वयं दुर्ग के झरोखे पर बैठ गया। राजपूत और अफगान युद्ध में एक-दूसरे से भिड़ गए और दिन के प्रथम प्रहर तक युद्ध जोरों से चलता रहा। उस समय तक दोनों दल समान साहस से युद्ध करते रहे, परंतु अंत में अफगानों के समक्ष राजपूतों का टिक पाना कठिन हो गया। दोनों दलों का शौर्य वर्णनातीत था। अंत में विजयश्री अफगानों को प्राप्त हुई। राजपूत सेनाएं पीछे हटने लगीं और दुर्ग के द्वार तक जा पहुंची। वहां पहुंचकर उन्होंने एक बार फिर साहस किया, परंतु अफगान सेनाओं के सामने उनकी एक न चली। अंत में राजपूत सेनाएं भागकर दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हो गईं। अफगान विजयश्री से मंडित होकर अपने खेमों को वापिस लौट गए।

पीतल के गोले

जब शेरशाह को यह ज्ञात हुआ कि अफगान सैनिकों ने ऐसी अद्भुत वीरता और

शौर्य दिखाकर बड़ा यश अर्जन किया है तब वह मन ही मन प्रसन्न हुआ। परंतु चूंकि उनका यह कार्य उसकी आज्ञा के विरुद्ध हुआ था अतः उसने वाह्यतः उनको बहुत डांटा-फटकारा। कुछ समय के पश्चात उसने इन अफगानों को उचित पारितोषिक, पद-वृद्धियां और जागीरें प्रदान करते हुए कहा, कि "राजपूतों को खदेड़ने में तुम लोगों ने जिस वीरता का परिचय दिया है, वह मुझे ज्ञात हो चुका है, अब तुम लोग यह देखो कि मैं किस ढंग से इस दुर्ग को अधिकृत करता हूं।" इसके पश्चात शेरशाह ने आदेश दिया कि सेना में जितना भी पीतल हो एकत्र कर दिया जाए तथा उसके गोले (देग) तैयार किए जाएं। उसके आदेश के अनुसार बाजार और खेमों में जितने भी पीतल के बर्तन और पीतल था, इकट्ठा कर लिया गया और उसके बड़े बड़े गोले ढाल दिए गए। इसके बाद इन गोलों को एक साथ दुर्ग की दीवारों पर छोड़ा गया, जिससे सारी दीवारें जर्जरित हो गईं, दुर्ग कई स्थानों से टूट गया और पूरणमल के लिए बड़ी चिंता का विषय हो गया। छह महीने के बाद स्वयं पूरणमल दुर्ग से बाहर आया और शेरशाह ने उससे कहा—"मैं तुम्हें क्षमा करने तथा बनारस का सूबेदार बनाने को प्रस्तुत हूं, परंतु तुम्हें मेरी एक शर्त स्वीकार करनी होगी। तुमने दुर्ग में अनेक मुसलमान परिवारों को बंदी बना रखा है और अब तुम उन्हें अविलंब छोड़ दो।" पूरणमल ने उत्तर दिया—"मेरे पास दुर्ग में एक भी मुसलमान परिवार बंदी के रूप में नहीं है। मैं दुर्ग का राजा भी नहीं हूं। मैं तो केवल राजा के प्रतिनिधि के रूप में शासन-कार्य देखता हूं। मैं आपके आदेश को राजा के पास ले जाऊंगा और जो वह उत्तर देगा आपकी सेवा में आकर प्रस्तुत करूंगा।" शेरशाह ने उसे दुर्ग में वापस जाने की अनुमति दे दी और वहां जाकर पूरणमल ने अपने हीरे जवाहरात आदि एकत्र करके शेरशाह के पास यह संदेश भिजवाया—"आपके समक्ष उपस्थित होने का अब मुझमें साहस नहीं है। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप दुर्ग से दो पड़ाव पीछे हट जाइए। मैं स्वतः दुर्ग के बाहर निकलकर दूसरे देश को चला जाऊंगा और दुर्ग आपके सैनिकों को दे जाऊंगा। दूसरा विकल्प यह भी है कि यदि आपका पुत्र आदिल खान और कुतुब खान बनेट यहां आकर मुझे आश्वस्त करें और मेरी संपत्ति और परिवार को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचाई जाए तो मैं स्वयं अपने परिवार सहित आपकी सेवा में उपस्थित हो सकता हूं। शेरशाह ने आदिल खान तथा कुतुब खान बनेट को पूरणमल के विचारों से अवगत कराया तथा पूरणमल को ले आने के लिए उन्हें दुर्ग के अंदर भिजवाया।

कुतुब खान बनेट दुर्ग में प्रविष्ट हुआ। उसने कई एक सौगंधें खाकर पूरणमल को विश्वास दिलाया कि सम्राट के हाथों में तुम्हारी जान और आन पूर्णतया सुरक्षित

रहेगी। इन बातों पर विश्वास करके पूरणमल अपने परिवार सहित रायसेन के दुर्ग से बाहर आ गया और शेरशाह के पड़ाव की ओर चल पड़ा। शेरशाह के संकेत पर आगंतुक राजपूत सरदार के निवास के लिए शाही सेना के पड़ाव के बीच में एक स्थान निश्चित कर दिया गया था। इसी स्थान की ओर पूरणमल कुतुब खान के संरक्षण में गया।

कुछ दिनों के बाद चंदेरी के मुसलमान सरदारों की विधवा स्त्रियां सड़क के मार्ग से शेरशाह के पड़ाव में आ गईं और उन्होंने रोना-पीटना प्रारंभ कर दिया। शेरशाह ने उनके विलाप को सुनते ही अपने दरबारियों से उनके विषय में पूछताछ की और उन्हें अपने सामने बुलवाया। उन्होंने सम्राट के समक्ष आते ही निवेदन किया, इस अत्याचारी नास्तिक (पूरणमल) ने हम लोगों को असहनीय कष्ट दिए हैं। इसने हमारे स्वामियों को मौत के घाट उतार दिया है, हमारी पुत्रियों को दासियों और नर्तकियों के रूप में अपने दुर्ग में बंदी बना दिया है और हमारी संपूर्ण भूमि और अन्य संपत्ति का अपहरण कर लिया है। यदि आप इस समय हमारी प्रार्थना को सुनकर न्याय का परिचय नहीं देते हैं और पूरणमल को कठोर दंड का भागी घोषित नहीं करते हैं तो कयामत के दिन जब सारे मुर्दे खड़े होंगे, हम ईश्वर के समक्ष इन अत्याचारों के लिए आपको ही दोषी ठहराएंगे।

शेरशाह ने इन पीड़ित स्त्रियों के शोकपूर्ण उद्‌गारों को सुनते ही बड़ा खेद प्रकट किया और उसकी आंखों से अश्रु गिरने लगे। उसने तत्काल उन स्त्रियों को सांत्वना देते हुए कहा—"आप लोग धैर्य रखिए। मैंने पूरणमल को अनेक सौगंधों तथा वचनों से विश्वास दिलाकर दुर्ग से बाहर निकलवा लिया है और अपने संरक्षण में ले लिया है।"

उन स्त्रियों ने सम्राट को उत्तर दिया, "आपको तत्काल अपने उलमा से इस संबंध में परामर्श लेना चाहिए और जैसा वे कहें आप को वैसा ही करना चाहिए।"

शेरशाह ने अपने खेमे में पहुंचते ही सारे उलमाओं को अपनी सेवा में बुलवाया जो उसकी विजयी सेना के साथ में थे। उसने उनके समक्ष चंदेरी के मुसलमानों और उनके परिवारों के साथ पूरणमल द्वारा किए गए समस्त अमानवीय अत्याचारों का ब्यौरा प्रस्तुत किया और परामर्श लिया कि पूरणमल के साथ सम्राट का ऐसी परिस्थिति में क्या व्यवहार होना चाहिए। सम्राट के प्रमुख उलमा शेख रफीउद्दीन और अन्य शेखों ने पूरणमल को प्राणदंड दिए जाने का निर्णय शेरशाह के समक्ष रखा।

फलतः पूरणमल को मार दिए जाने का निश्चय कर लिया गया। रात्रि में शेरशाह

ने ईसा खान हाजिब को आदेश दिया कि वह अपने समस्त सैनिकों और हाथियों के साथ अति शीघ्र एक निश्चित स्थान पर गौंडवाना की दिशा में प्रस्थान करने के लिए तैयार हो जाए। उसने इसके साथ ही हबीब खान को आदेश दिया कि वह पूरणमल के पड़ाव को घेर ले और किसी भी व्यक्ति से कोई बातचीत किए बिना ही वह पड़ाव के निवासियों पर कड़ी निगरानी रखे जिससे वहां से कोई भी भाग न सके। जब हाथी और सैनिक अपने निश्चित स्थान पर एकत्र हो गए तो शेरशाह ने आदेश दिया कि वे प्रातःकाल सूर्योदय के समय पूरणमल के पड़ाव को चारों ओर से घेर लें तथा उसे सपरिवार मृत्यु के घाट उतार दें।

जब पूरणमल को इस अप्रत्याशित आक्रमण की सूचना मिली तब वह अपनी सर्वाधिक प्रिय स्त्री रत्नावली के खेमे में गया। यह स्त्री उच्चकोटि की हिंदी कविताएं लिखा करती थी। पूरणमल ने उसका सिर तलवार से काट दिया और खेमे से बाहर निकलकर अपने अन्य साथियों से कहा—"आप लोग भी मेरी भांति अपनी स्त्रियों और लड़कियों को स्वयं मार डालिए।" कहा जाता है कि जब राजपूत सरदार अपनी स्त्रियों को इस प्रकार मारने में व्यस्त थे, शेरशाह के अफगान सैनिकों ने उनपर धावा बोलकर राजपूतों को काटना प्रारंभ कर दिया।

राजपूत अपने सरदार पूरणमल के साथ क्षणभर में मृत्यु के घाट उतार दिए गए। जीवित स्त्रियां बंदी कर ली गई। पूरणमल की एक पुत्री और उसके तीन भर्ताजों को भी जीवित बंदी बना लिया गया। शेरखान ने पूरणमल की लड़की को नृत्य करनेवालों को सौंप दिया जिससे वे उसे नृत्य आदि में निपुण बनाकर सार्वजनिक स्थानों में नृत्य करवाएं। उसने तीनों राजपूत राजकुमारों को मरवाकर पूरणमल के वंश का अंत कर दिया। उसने मुंशी शहबाज खान उच्चखैल सरवानी को रायसेन के दुर्ग का नायक नियुक्त किया। इस प्रकार पूरणमल का दमन करने के पश्चात वह आगरा लौट आया जहां वह वर्षा ऋतु में निवास करता रहा।[1]

1. यह घटना सन 1543 ई. के जुलाई मास में हुई। डा. कालिका रंजन कानूनगो ने इस घटना में 'शेरशाह' को निर्दोष ठहराया है।

11. समस्त उत्तरी भारत का शासक

वर्षा ऋतु समाप्त होने पर शेरशाह ने अपने प्रमुख सरदारों से अन्य क्षेत्रों पर सैनिक आक्रमण करने के संबंध में विचार-विमर्श किया। उसे यह सुनकर बड़ा हर्ष हुआ कि अब लगभग समस्त भारतवर्ष उसकी विजयी पताका के अधीन हो गया है।

उसके सरदारों ने उससे निवेदन किया "आपके विजयी सैनिकों ने समस्त उत्तर भारत को जीत लिया है, इस कारण अब यह आवश्यक है कि आपकी सेना दक्षिण की ओर विजय के लिए प्रस्थान करे और वहां के विद्रोही डाकुओं को दंड दे। हमने यह भी सुना है कि ये विद्रोही शियाधर्मावलंबी हैं इसलिए उनका दमन हमारे लिए उतना ही पुण्यकर है जितना कि हिंदू नास्तिकों का।" शेरशाह ने उनकी इन बातों को सुनकर कहा—"आपकी ये सब बातें न्याय-संगत हैं, किंतु मेरा विचार है कि जब से सुलतान इब्राहीम सिंहासनारूढ़ हुआ है तब से ही नास्तिक जमींदारों ने इन क्षेत्रों में इस्लाम धर्म का पूर्णरूप में विनाश किया है। उन्होंने दिल्ली और मालवा के क्षेत्रों में विशेषकर मस्जिदों को गिरवा दिया है और इनके स्थान पर अपनी मूर्तियों के पूजने के केंद्र अथवा मंदिर बनवा दिए हैं। मेरा निश्चय है कि सर्वप्रथम मैं इन नास्तिकों का अंत करूं और उनके स्थानों को हस्तगत करके उन्हें पुनः पवित्र बनाऊं। ऐसी परिस्थिति में सर्वप्रथम मैं मालदेव जैसे नास्तिक सरदार का दमन आवश्यक समझता हूं। एक समय था जब वह नागौर और अजमेर के शासक का सेवक था। इस शासक ने उसकी स्वामिभक्ति पर विश्वास किया, किंतु इस कृतघ्न और घृणित मालदेव ने अपने स्वामी की हत्या कर दी और छल-कपट तथा आतंक से उसके राज्य का स्वयं स्वामी बन गया है।"

शेरशाह के इस निश्चय का उसके सरदारों ने सहृदयता पूर्वक समर्थन किया और 950 हिजरी में (1543-44) शाही सेनाओं ने विजय पताका फहराते हुए सम्राट के व्यक्तिगत संरक्षण में नागौर, अजमेर और जोधपुर की दिशा में प्रस्थान कर दिया।

इस युद्ध के लिए शेरशाह के साथ विशाल सेना थी कि सैनिकों की संख्या

का अनुमान लगाना असंभव था। सारे वृद्ध अनुभवी अफगान सेनापतियों का कथन था कि उन्होंने कभी ऐसी विशाल और बहुसंख्यक सेना नहीं देखी थी। कुछ सरदारों ने तो पहाड़ियों पर चढ़कर सेना की विशालता का अनुमान लगाने का प्रयास किया, किंतु वे किसी प्रकार से सैनिकों की सही गणना न कर सके।

आगरा से फतेहपुर सीकरी पहुंचने पर शेरशाह ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि अब वे युद्ध-क्रम से प्रस्थान आरंभ करें और प्रत्येक पड़ाव पर मिट्टी की रक्षा-पंक्तियां खड़ी करें। मार्ग में एक दिन उन्हें रेत के मैदान में पड़ाव डालना पड़ा। कहा जाता है कि भरसक प्रयत्न करने पर भी अफगान सैनिक इस अवसर पर अपने पड़ाव के चारों ओर रक्षा-पंक्तियां (दीवारें) न बना सके। शेरशाह ने प्रत्येक संभव विधि पर विचार किया जिससे सुरक्षा-पंक्तियां बनाई जा सकें, किंतु उसे कोई उचित उपाय न सूझा। उसके पौत्र महमूद खान ने इस अवसर पर उसकी सहायता की और उसने एक प्रस्ताव शेरशाह के समक्ष प्रस्तुत किया। उसने सम्राट से निवेदन किया कि—"यदि हम बोरों में बालू भर लें और उनकी दीवारें बना लें तो हमारी पंक्तियां तैयार हो सकती हैं।" शेरशाह ने उसके इस सुझाव को सहर्ष स्वीकार करते हुए उसकी बुद्धि की प्रशंसा की। इस स्थान पर उसके सैनिकों ने रेत के बोरों से सुरक्षा पंक्तियां बनाई।

मालदेव के साथ छल

शेरखान ने जोधपुर पहुंचते ही मालदेव को पराजित करने के लिए एक सफल योजना सोच ली। उसने मालदेव के सरदारों की ओर से अपने नाम इस आशय के पत्र लिखवाए—"सम्राट को मालदेव को पराजित करने में किसी प्रकार की चिंता अथवा संदेह को अपने हृदय में स्थान नहीं देना चाहिए। युद्ध के ठीक मध्य में हम लोग मालदेव को पकड़कर आपकी सेवा में बंदी के रूप में ले आएंगे।" इन पत्रों को रेशमी झोलों या खरीतों में बंद करवाकर उसने अपने एक विश्वास पात्र सैनिक सरदार द्वारा मालदेव के मंत्री के खेमे के निकट डलवा दिया। जब राजपूत मंत्री ने उस खरीते को अपने खेमे के निकट पड़ा पाया तो उसने उसे उठा लिया और उसके पत्रों को बिना खोले मालदेव के पास भिजवा दिया। कहा जाता है कि जब मालदेव ने पत्रों को पढ़ा तो वह इतना भयभीत हो गया कि वह अपने दुर्ग से जंगलों की ओर भाग गया। उसके सरदारों ने सौगंध खाकर उसके प्रति स्वामिभक्ति प्रकट की, किंतु मालदेव ने उनकी बातों पर विश्वास न करके जोधपुर को छोड़कर भागना उचित समझा। राजपूत सरदारों ने मालदेव के भागने के पश्चात भी साहस से काम लिया एवं शेरशाह का डटकर सामना किया। दो राजपूत सरदारों जय चंदेल तथ गोहा

ने शत्रुओं के विरुद्ध लड़ने में अद्वितीय वीरता का परिचय दिया। राजपूतों ने दुर्ग से निकल कर अफगानों को घेरना प्रारंभ किया और उन्होंने शेरशाह की कई सैनिक टुकड़ियों को रौंद डाला। एक अफगान सरदार ने बढ़कर शेरशाह को सचेत करते हुए कहा, "आप तुरंत घोड़े पर सवार होकर शत्रु सेना पर आक्रमण कर दीजिए नहीं तो वे आपकी सेना को पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे।"

इस समय शेरशाह प्रातःकालीन नमाज में व्यस्त था और मुसताआबी-अशर पढ़ रहा था। उसने इस अफगान सरदार से कुछ कहने के बदले उससे इंगित करके अपना घोड़ा मंगवाया। वह अभी घोड़े पर सवार ही हो रहा था कि उसे अफगानों की विजय और राजपूतों के विनाश की सूचना मिली। उसे यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि खवास खान ने जयचंदेल और गोहा को मार डाला है और अफगानों ने सारी राजपूत सेना को नष्ट कर दिया है। फिर भी जय चंदेल और गोहा की वीरता की कथा सुनकर शेरशाह उनसे बड़ा प्रभावित हुआ और उसके मुख से तत्काल ये महत्वपूर्ण शब्द निकल पड़े, "संभवतः एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मेरे हाथ से दिल्ली का साम्राज्य ही निकलने वाला था।" शेरशाह ने बाजरे के शब्द से मारवाड़ की रेतीली भूमि की ओर संकेत किया है। उसने खवास खान, ईसा खान नियाजी और कुछ सरदारों को नागौर का शासन सौंपकर स्वयं राजधानी की ओर प्रस्थान कर दिया। खवास खान ने जोधपुर के निकट खवासपुर नामक एक दुर्ग बनवाया और नागौर, अजमेर, जोधपुर के दुर्ग और मारवाड़ के सारे क्षेत्रों को जीतकर अपनी सत्ता के अंतर्गत किया। मालदेव ने जोधपुर से भागने के बाद गुजरात की सीमाओं पर स्थित सिवाना नामक दुर्ग में शरण ली।

इसके बाद शेरशाह के सरदारों ने उसे परामर्श दिया कि वर्षा ऋतु के निकट होने के कारण अब सैनिकों को छावनियों में रख देना चाहिए, किंतु शेरशाह ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा—"मैं वर्षा ऋतु में उस स्थान पर अपनी सेनाओं सहित रहना चाहता हूं जहां से मैं अपने युद्ध संबंधी कार्य का भली-भांति संचालन कर सकूं।" यह कहकर उसने चित्तौड़ की ओर प्रस्थान किया। कहा जाता है कि अभी शेरशाह की सेना चित्तौड़ से छह कोस की दूरी पर थी तभी वहां के राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार करते हुए उसे दुर्ग की चाबियां भेज दीं।

इस प्रकार बिना युद्ध किए चित्तौड़ को हस्तगत करने के बाद[1] उसने खवास खान के छोटे भाई मियां अहमद सरवानी और हुसैन खान खिलजी को यहां के शासन

---

1. सन 1545 के प्रारंभ में

की देख-रेख के लिए नियुक्त कर दिया और स्वयं कछवाड़ा की ओर प्रस्थान कर दिया। इसी स्थान पर उसके ज्येष्ठ पुत्र आदिल खान ने जब उससे रणथंभौर की ओर जाने की अनुज्ञा मांगी तो शेरशाह ने उसे अनुज्ञा देते हुए कहा—"मैं केवल तुम्हें प्रसन्न करने के लिए रणथंभौर जाने की अनुज्ञा देता हूं, किंतु वहां अधिक समय तक न रुकना और शीघ्र सेना में लौट आना।"

जब शेरखान चित्तौड़ को छोड़कर कछवाड़ा के निकट आया तो शुजाअत खान हिंदिया की ओर चल दिया। शुजाअत खान के पीछे कुछ विरोधियों ने सम्राट से उसकी शिकायत की कि वह 12 हजार घुड़सवारों के स्थान पर (इतने सवारों का वेतन उसे राजकोष से मिलता था) बहुत कम सैनिक अपनी सेवा में रखता है और इसी कारण उसने सम्राट के समक्ष उपस्थित होने का साहस न कर हिंदिया की ओर जाना उचित समझा है। शुजाअत खान के पुत्र मियां बियाजीद और दौलत खान ने जो शेरशाह के साथ थे, शुजाअत खान के पास इस शिकायत की पूरी सूचना भेज दी। समाचार पाते ही शुजाअत खान कछवाड़ा में सम्राट की सेवा में उपस्थित हो गया और उसने सम्राट से प्रार्थना की कि मेरे सैनिकों की जांच करने के लिए मेरे घोड़ों को दागा जाए। कहा जाता है कि उसके 7,500 घोड़ों को दागा गया और शेष के लिए उसने सम्राट से कहा कि वे मेरे क्षेत्र में अनुशासन की देख-रेख के लिए उपस्थित हैं, किंतु यदि सम्राट चाहें तो वे भी यहां दागने के लिए लाए जा सकते हैं।

शेरशाह ने उसे उत्तर दिया कि "आपको अब अपने शेष घोड़ों को मेरे सामने लाने की आवश्यकता नहीं है। मुझे विश्वास हो गया है कि आप जितने सैनिकों का वेतन पाते हैं उतने ही सैनिक रखते हैं। जिन लोगों ने मुझसे आपकी झूठी शिकायत की है उनके मुंह काले हो गए हैं।" इसके बाद उसने शुजाअत खान को हिंदिया लौट जाने की आज्ञा दी और साथ ही उसे आदेश दिया कि ज्यों ही आपको कालिंजर पर मेरी विजय का समाचार प्राप्त हो जाए, आप अविलंब दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दें और मार्ग में कहीं भी न रुककर शिया विद्रोहियों के दमन के लिए दक्षिण भारत पहुंच जाएं।

शेरशाह ने स्वयं कछवाड़ा से कालिंजर[1] की ओर प्रस्थान कर दिया। शाहबंदी पहुंचकर उसे यह विदित हुआ कि आलम खान मियाना नामक एक सैनिक सरदार ने दोआब में विद्रोह कर दिया है तथा मेरठ के प्रांत पर अधिकार करके अनेक शाही

1. समस्त तत्कालीन ग्रंथों में शब्द कालिंजर ही लिखा हुआ है।

क्षेत्रों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। उसने तत्काल शाहबंदी से आगरे की ओर प्रस्थान कर दिया जिससे कि वह स्वयं इस विद्रोह का दमन कर सके। वह अभी दो पड़ाव ही चला था कि पुनः उसे सूचना मिली कि आलम खान का विद्रोह शांत कर दिया गया है और खवास खान के सेवक एवं सरहिंद के नायक भगवंत ने उसे सरहिंद के निकट पराजित करके मार डाला है। इस समाचार को पाकर शेरशाह अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने पुनः कालिंजर की ओर प्रस्थान कर दिया।

जब शेरशाह की सेना कालिंजर के समीप पहुंची तब यहां के राजा कीरतसिंह ने उसका स्वागत करने के स्थान पर दुर्ग को बंद करके उससे युद्ध करने का निश्चय कर लिया। सम्राट ने भी दुर्ग को घिरवा लिया और अपने सैनिकों को इसपर आक्रमण करने का आदेश दिया। उसके सैनिकों ने तोपों को रखने के लिए ऊंचे ऊंचे टीले बनाए और इन टीलों से उन्होंने दुर्ग के निवासियों पर गोलियों और बाणों की वर्षा आरंभ कर दी। कहा जाता है कि शेरशाह ने इस दुर्ग को इस कठिन विधि से हस्तगत करने का इसलिए प्रयास किया कि वह कीरतसिंह की एक नर्तकी को जीवित पकड़ना चाहता था। कीरतसिंह के दरबार में पटार नामक एक नर्तकी थी जिसकी सुंदरता की अतिशय प्रशंसा शेरशाह ने सुन रखी थी। उसे जीवित पाने के उद्देश्य से ही दुर्ग को तोपों से उड़ाने और कीरतसिंह को जौहर के लिए विवश करने के स्थान पर शेरशाह ने अपने सैनिकों को उसपर केवल गोलियों और बाणों की वर्षा करने का आदेश दिया।

हि. सन् 952 (ईस्वी सन 1544-45) के रबी-उल-अव्वल की नवीं तारीख (शुक्रवार) को जब अभी दिन के केवल पांच घंटे ही बीते थे, सम्राट ने कलेवा करने की इच्छा व्यक्त की। उसने अपने शेखों और उलमाओं के साथ जलपान आरंभ किया। जलपान के बीच में ही शेख निजाम ने कहा, ''नास्तिकों के विरुद्ध युद्ध करने की अपेक्षा मुसलमान के लिए अन्य कोई कार्य अधिक पुण्यदायक नहीं है। इस युद्ध में यदि आप मरते हैं तो आपको शहीद का सम्मान मिलता है और यदि आप जीवित रहते हैं तो आपको गाज़ी अथवा धर्म के नाम पर विजेता का सम्मान मिलता है।''

शेरशाह ने जलपान समाप्त करने के बाद दरिया खान को आदेश दिया कि मेरे निरीक्षण के लिए बारूद के गोले लाए जाएं। वह स्वयं एक टीले पर चढ़ा और अपने हाथ से शत्रु पर अनेक बाण छोड़े। इसी बीच दरिया खान गोले ले आया और शेरखान उनके निरीक्षण के लिए टीले से नीचे उतर आया। जब उसके सैनिक इन गोलों को शत्रु की ओर फेंक रहे थे, तभी एक गोला दुर्ग के द्वार से टकराकर वापस

उस स्थान पर आ गिरा जहां अन्य गोले पड़े हुए थे और जहां शेरशाह स्वयं खड़ा था। इस गोले से अन्य सारे गोले एक ही साथ भड़क उठे और खुद दग गए। शेख खलील, शेख निजाम तथा अन्य सरदार जो वहां खड़े थे, बाल बाल बच गए, किंतु शेरशाह का शरीर इससे बुरी तरह जल गया। एक नौजवान राजकुमारी जो गोलों के समीप खड़ी थी, जलकर मर गई। जब शेरशाह को घायल अवस्था में उसके खेमे में पहुंचाया गया तब उसके सारे सरदार तत्काल उसके पास आ गए। उसने ईसा खान हाजिब, मसनद खान कालकापुर, ईसाखान के जामाता और शहबास खान परवानी को अपने पास बुलवाया और उनसे कहा कि, "मेरे जीते जी कालिंजर को जीत लो।"

ईसा खान ने खेमे से निकलकर सारे सरदारों को शेरशाह की इस इच्छा से अवगत कराया। फलतः चारों ओर से चींटियों और टिड्डियों की भांति अफगान सरदारों और सैनिकों ने शत्रु पर आक्रमण कर दिया और तीसरे पहर की नमाज तक दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उन्होंने सारे राजपूतों को मौत के घाट उतार दिया। जब शेरशाह को इस विजय का समाचार सुनाया गया तो उसके चेहरे पर प्रसन्नता छा गई। राजा कीरतसिंह अभी अपने 70 साथियों के साथ एक महल में छिपा हुआ था। कुतुब खान ने स्वयं रातभर इस महल को घेर रखा जिससे कीरतसिंह जीवित भाग न सके। शेरशाह ने अपने सरदारों और पुत्रों को वहां से बुलवा लिया। इस कारण कीरतसिंह को वहां से जीवित भाग निकलने का अवसर मिल गया, किंतु दूसरे दिन प्रातःकाल ही अफगान सरदारों ने राजा को जीवित बंदी कर लिया।

सन 952 हिजरी में रबी-उल-अव्वल की दसवीं तारीख को (22 मई, 1545 को) शेरशाह का देहांत हो गया। उसकी मृत्यु की तिथि 'अजआतिश मुर्द' नामक वाक्य में निहित है जिसका अर्थ है कि शेरशाह परलोक सिधार गया।

शेरशाह ने पांच वर्ष तक दिल्ली और छह मास तक बंगाल के शासक की हैसियत से राज्य किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका छोटा पुत्र जलाल खान गद्दी पर बैठा। कालिंजर के पास लालगढ़ में शेरशाह के शरीर को दफन किया गया। कुछ समय बाद उसकी हड्डियां सहसराम लाई गईं। वहां उसकी कब्र उसके पिता की कब्र के पास ही उस रौजे में बनाई गई जिसका निर्माण स्वयं शेरशाह ने किया था। वह रौजा आज भी मौजूद है। यह भारत के मध्य युग के इतिहास की कहानी कहता है जो शेरशाह की याद विशेष रूप से दिलाती है।

12. शेरशाह का शासन प्रबंध

शेरशाह के जीवन-मरण और युद्ध-कौशल तथा राज्य-विस्तार की कहानी तब तक अधूरी ही रहेगी जब तक उसके अत्यंत कुशल शासन प्रबंध का वर्णन न किया जाए। आज तक चली आ रही अनेक व्यवस्थाएं ऐसी हैं जो शेरशाह की देन हैं तथा उसकी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता की परिचायक हैं। यह कथन अतिशयोक्ति न मानी जाएगी कि शेरशाह ने अपने राज्य के विस्तार और संघटन को स्थायी बनाने के लिए जो सुदृढ़ व्यवस्था शुरू की थी, उसका लाभ हुमायूं और अकबर के काल से लेकर अब तक के शासन प्रबंध करने वाले उठा रहे हैं। अंग्रेज इतिहास लेखक कीन ने भारतीय राजाओं में से शेरशाह के शासन प्रबंध की विशेष प्रशंसा करते हुए कहा है—"किसी शासन ने, ब्रिटिश शासन ने भी, राज्य के प्रबंध में ऐसी प्रतिभा नहीं दिखलाई जैसी इस पठान शेरशाह ने दिखलाई है। शेरशाह ने अपने जीवन का हर क्षण उत्तम शासन प्रबंध और कुशल सैन्य संचालन करने में लगाया। वह राजकीय शान-शौकत की ओर से हमेशा उदासीन रहा। वह विलासिता से दूर रहा। किंवदंती है कि एक बार हुमायूं का एक दूत उससे मिलने गया। मिलकर आने पर उसने शेरशाह के बारे में कहा कि, "जब मैं उसके पास गया तब शेरशाह कड़ी धूप में कुदाली लिए खाई खोदने में लगा रहा। मुझे देखकर वह वहीं जमीन पर बैठ गया और मुझसे बातें करने लगा।" राज-काज गंभीर विषय है और कुदाली लेकर राजा का काम करना भी असाधारण बात है। किंतु दोनों से अधिक महत्व की बात यह है कि दोनों असाधारण काम-काज से संतुलन बनाए रखा जाए और एक काम को दूसरे में बाधक नहीं बल्कि साधक बनाया जाए।

शेरशाह ने असम से लेकर मुलतान और सिंध तक तथा कश्मीर से लेकर सतपुड़ा की पहाड़ियों तक, न केवल एक सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित किया, वरन शासन-संबंधी एकरूपता की सृष्टि करके एक सुसंघटित एकतंत्र राज्य की नींव भी डाल दी। शेरशाह के पहले दिल्ली के सिंहासन पर जितने मुसलमान बादशाह बैठे,

उन्होंने दूर के अधीनस्थ प्रांतों को केंद्रीय सरकार से संबद्ध करने का कोई यत्न नहीं किया। इसी का यह फल था कि बड़े प्रांतों के गवर्नर मौका पाते ही न केवल स्वतंत्र हो बैठते थे, वरन सम्राट को भी अपदस्थ कर डालते थे। मुसलमान बादशाहों में शेरशाह ने ही पहले केंद्रीय सरकार और साम्राज्य के प्रत्येक भाग के बीच सीधा संबंध स्थापित किया। संपूर्ण साम्राज्य के लगान पर हाथ रखना उसका एक प्रधान उद्देश्य था। सुशासन की सुविधा के लिए उसने प्रांतों को सरकार में और सरकार को परगनों में बांट दिया था। ये सरकार और परगने आजकल की कमिश्नरी और जिले हैं। प्रत्येक परगने में एक शिकदर, एक अमीन, एक खजांची और दो क्लर्क—एक फारसी और दूसरा हिंदी लिखने के लिए होते थे।

दिनचर्या

जब भाग्य ने शेरशाह को सत्तारूढ़ किया और भारतवर्ष का राज्य उसके अधिकार में आ गया तब उसने विद्वानों के अुनभवों और निजी योग्यता के कारण अपनी प्रजा के लिए ऐसे उत्तम नियम बनाए कि उन्हें कर्मचारियों के अत्याचारों से मुक्ति मिल गई। उसने कठोर अनुशासन से राज्य में होनेवाले अपराधों और उपद्रवों को समाप्त कर दिया। प्रजा को संपन्न कर दिया। सुरक्षित और सुविधाजनक यातायात के मार्ग बनवाए और सैनिकों तथा व्यापारियों को अनेक प्रकार के लाभ पहुंचाए। उसने अपने नियमों और राज्यादर्शों का दृढ़ता से पालन किया और शीघ्र ही उसके सारे राज्य में शांति और सुव्यवस्था का वातावरण स्थापित हो गया। वह प्रायः कहा करता था—"सम्राटों के लिए इतिहास के पृष्ठों को अपने उच्चादर्शों और धार्मिक प्रवृत्तियों द्वारा रंगना शोभनीय है। जितना पूजा-पाठ संबंधी काम उलेमा और जनसाधरण करते हैं, उसमें सम्राट का यथेष्ट भाग है। राजाओं को ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रगट करनी चाहिए क्योंकि उसने उनपर विशेष कृपा करते हुए अपनी प्रजा को उनके संरक्षण में रख दिया है। इसी कारण हम सम्राटों को ईश्वर के आदेशों का कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।"[1]

शेरशाह शासन और राजस्व संबंधी समस्त छोटी-मोटी बातों को स्वयं देखा करता था। शासन संबंधी कार्यों में व्यस्त रहने पर भी वह ईश्वरभक्ति के कार्यों से उदासीन नहीं रहता था। वह इन दोनों कामों में व्यस्त रहता था। जब रात्रि का एक-तिहाई भाग शेष रहता था तभी उसका सेवक उसे जगा दिया करता था।

---

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

वह प्रतिदिन जागने के बाद स्नान करके रात्रि के चौथे प्रहर तक नमाज आदि पूजा-पाठ संबंधी कार्यों में संलग्न रहता था। तत्पश्चात उसके विभिन्न अधिकारी और मंत्री उसकी सेवा में उपस्थित होकर अपने विभागीय कार्यों के दैनिक विवरण उनके समक्ष प्रस्तुत करते थे। शेरशाह उन्हें शासन संबंधी जो भी आज्ञा देता था, वे उन्हें लिख लेते थे जिससे कि भविष्य में उन्हें इनके लिए सम्राट से पूछताछ न करनी पड़े। प्रातः सूर्योदय के बाद वह पुनः अनेक दरबारियों के साथ सामूहिक नमाज पढ़ता था और कुछ समय के लिए मुस्त-अवे-अशर तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन भी करता था। इसके पश्चात उसके सेनापति और सरदार उसकी सेवा में उपस्थित होते थे और पुकारने वाले सेवक एक एक व्यक्ति को "अमुक व्यक्ति का पुत्र, अमुक सरदार सम्राट की सेवा में हाजिर हो" पुकारकर सम्राट के सामने भेजते थे। वह अपने सरदारों और सैनिकों से पूछता था कि यदि आपके पास जागीरें न हों तो मैं आपको जागीरें दे सकता हूं, किंतु आपको मेरे साथ युद्धों में जाना होगा। यदि कोई सरदार या सैनिक एक जागीर रखते हुए असत्य बोलकर सम्राट से दूसरी जागीर ले लेता तो सत्य का पता लगने पर उसे कठोर दंड दिया जाता था।

इसके बाद वह फरियादियों और पीड़ितों की प्रार्थनाएं सुनता था। शेरशाह सबके साथ न्याय और निष्पक्षता का व्यवहार करना आवश्यक समझता था। वह प्रायः कहा करता था—"न्याय सबसे उत्तम धार्मिक आदर्श है। इस कर्तव्यपालन का मुसलमान और हिंदू बराबर आदर करते हैं।" वह राज्य के शासन के कार्यों को स्वयं देखता था। उसने अपने दिन और रात के समय को इन कार्यों की देखरेख के लिए इस प्रकार बांट रखा था कि वह किसी भी समय निष्क्रिय तथा आलसी न रहता था। उसका यह कथन और आदर्श अत्यंत सराहनीय है—"बड़े बड़े पदाधिकारियों को सदैव सक्रिय रहना चाहिए। उन्हें अपने पद के महत्व और उच्च स्थान के कारण राज्य के कार्यों को न तो तुच्छ समझना चाहिए और न अपने मंत्रियों पर आवश्यकता से अधिक विश्वास ही करना चाहिए। समकालीन अन्य शासकों के मंत्री और दरबारी भ्रष्ट थे। इस कारण वे दुर्बल थे। उनकी दुर्बलता से ही लाभ उठाकर मैं भारत का सम्राट बन सका। सम्राट को यह देख लेना चाहिए कि वकील और वजीर भ्रष्ट न हों। रिश्वत लेनेवाले तथा देनेवाले सारे पदाधिकारी सम्राट की सेवा के योग्य नहीं होते हैं। मुझे उस व्यक्ति को अपने निकट देखकर घृणा होती है जो रिश्वत लेता है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति कभी स्वामिभक्त नहीं हो सकता और उसके कार्यों से राज्य और सम्राट को अपार क्षति पहुंच सकती है।"

जब शेरशाह के सुसंपन्न राज्य की स्थापना हो गई तब उसने अपनी प्रजा

को सब प्रकार के अत्याचारों से बचाना अपना मुख्य लक्ष्य बनाया। कहा जाता है कि उसने अत्याचारी कर्मचारियों पर कभी दया नहीं की। यहां तक कि यदि उसके निकट संबंधी, भाई और पुत्र किसी अपराध के भागी होते तो वह उनपर भी दया नहीं करता था। उनके साथ भी उसका वही व्यवहार होता था जो वह अन्य अपराधियों के साथ करता था। उसके चरित्र की एक प्रशंसनीय विशेषता यह थी कि वह अत्याचारियों और अन्याय करनेवालों को दंड देने में किसी प्रकार का विलंब नहीं करता था।

उसने अपने शासनकाल में घोड़ों को दागने की प्रथा चलाई। उसके पूर्व इस प्रथा को किसी अन्य शासक ने नहीं लागू किया था। उसका कथन था कि सरदारों एवं सैनिकों के अधिकारों में भली भांति अंतर कर सकने के लिए यह प्रथा आवश्यक है। सेनापतियों के अत्याचारों से सामान्य सैनिकों को बचाने के लिए उसने यह व्यवस्था लागू की थी और उसकी इच्छा थी कि प्रत्येक सरदार उतने ही सैनिक और घोड़े अपने अधीन रखे जितने उसे पदानुसार रखने का अधिकार है। उसका इस संबंध में व्यक्तिगत कथन था—''मैंने सुलतान इब्राहिम के समय में तथा उसके बाद भी प्रायः देखा कि बहुत से बेईमान एवं भ्रष्ट सरदार वेतन लेने के समय अपने साथ अनेक अश्वारोही सम्राट के निरीक्षण के लिए लाते थे, किंतु जागीरें और वेतन ले लेने के बाद अधिकांश अश्वारोहियों को बिना वेतन दिए सेवा से पृथक कर देते थे। वे केवल इने-गिने सैनिक आवश्यक कार्यों के लिए अपनी सेवा में रखते थे और इनको भी पूरा वेतन नहीं देते थे। ऐसा करने में न तो उन्हें अपने व्यवहार पर लज्जा होती थी और न ही वे इस बात की चिंता करते थे कि उनके इस कुकर्म से सम्राट को कितनी क्षति उठानी पड़ती थी। उनके दुराचार की सीमा देखिए कि जब सम्राट उन्हें पुनः अपनी सेना अपने निरीक्षण के लिए ले आने की आज्ञा देता था तब वे अपरिचित सैनिक और घोड़े उनके सामने लाकर खड़े कर देते थे। इस प्रकार राजकोष से प्राप्त होनेवाले समस्त धन को वे अपने पास ही रख लेते थे। युद्ध के समय में उनके पास कम सैनिक होने के कारण सम्राट को पराजय का मुख देखना पड़ता था। ये बेईमान सरदार अधिक धन संग्रह कर लेने के बाद सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने में भी न चूकते थे। जब कभी वे सम्राट की दशा दयनीय देखते तो या तो उसके शत्रु के साथ जा मिलते या उसके विरुद्ध विद्रोह कर अपने क्षेत्र में स्वतः शासक बन बैठते। इस प्रकार अपने सम्राट के विनाश से वे किसी प्रकार की क्षति के भागी न बनते थे। जब ईश्वर ने मुझे भारत के सिंहासन पर आसीन होने का सौभाग्य प्रदान किया तब मैंने इन कपटी सरदारों और सैनिकों से सावधान रहने

का निश्चय कर लिया। मैंने सत्तारूढ़ होते ही उनके घोड़ों को दागने का आदेश दिया। इससे न तो सरदार निरीक्षण के समय अपरिचित घोड़े ही मेरे सामने ला सकते थे और न वे मुझसे संपूर्ण वेतन लेकर कम सैनिक अथवा घोड़े ही रख सकते थे।''

कठोर नियंत्रण

शेरशाह ने सरदारों को तब तक वेतन देना बंद कर दिया जब तक उनके सारे घोड़ों को दाग[1] न दिया जाता। उसने इस प्रथा को इतना विस्तृत कर दिया कि वह राजभवन की दासियों एवं मेहतरों को भी बिना दाग लगवाए वेतन न देता था। उसके लेखाकार सैनिकों और घोड़ों के हुलिए लिपिबद्ध करने लगे और वह स्वयं इन हुलियों के आधार पर ही सैनिकों और घोड़ों का निरीक्षण करने लगा। कहा जाता है कि सैनिकों का वेतन निर्धारित करते समय वह उनकी बड़ी सावधानी से जांच-पड़ताल करता था और अपने सामने ही उनके घोड़ों को दगवाता था।

वह प्रत्येक कर्मचारी से अलग अलग विचार-विमर्श करता था, पुराने सैनिकों का निरीक्षण करता था, नए भर्ती किए गए सैनिकों से पूछताछ करता था और अफगानों से उनकी मातृभाषा में बातचीत करता था। कहा जाता है कि यदि कोई अफगान उसे अफगानी भाषा में ठीक उत्तर दे देता था तो वह उसे एक तीर छोड़ने का आदेश देता था। यदि उसका तीर निशाने पर ठीक लग जाता था तो वह उसके वेतन में पर्याप्त वृद्धि कर देता था। वह प्रायः कहा करता था, ''अफगानी भाषा मेरे लिए एक मित्र और सहायक का काम करती है। इसी समय वह सरकारी कोष का, जो राज्य के विभिन्न भागों से राजधानी में भेजा जाता था, निरीक्षण भी करता था। इसके साथ ही साथ वह अपने सरदारों, वकीलों, जमींदारों और अन्य देशों से आने वाले दूतों के साथ इसी समय वार्तालाप और भेंट भी करता था। वह अपने अमीनों की रिपोर्टों को भी सुनता था और उनका उत्तर अपनी बुद्धि के अनुसार मुंशियों द्वारा उनके पास लिखित रूप में भिजवाता था। जब दिन में ढाई घड़ी बीत जाती तब वह दरबार से उठकर उलमा और धार्मिक पुरुषों के साथ राजभवन में जलपान करने के लिए चला जाता था।

जलपान के बाद वह पुनः दरबार में आ जाता था और दोपहर तक शासन के कार्यों में संलग्न रहता था। दोपहर में वह खैलूला नामक धार्मिक रस्म अदा

---

1. तारीखे खानजहां (मूल पोथी पृष्ठ 187) के अनुसार भारत में अलाउद्दीन खिलजी ने सर्वप्रथम इस प्रथा को चलाया।

करके अल्पाहार करता था और कुछ समय के लिए विश्राम भी करता था। इस विश्राम के बाद वह अनेक धार्मिक पुरुषों के साथ मिलकर तीसरे पहर की नमाज पढ़ता था और फिर कुरान शरीफ का अध्ययन करता था। फिर वह अपने राज्य के विभिन्न प्रकार के कार्यों में व्यस्त हो जाता था। वह अपने आदर्शों एवं सिद्धांतों की कभी भी अवहेलना न करता था चाहे वह दरबार में हो, चाहे रणक्षेत्र में हो और चाहे रनिवास में हो।

प्रशासन के नियम

उसने राज्य की संपन्नता को बढ़ाने, कृषि की उन्नति करने और राजस्व की सुव्यवस्थित वसूली के लिए बड़े सरल एवं आदर्श नियम बनाए।

उसने प्रत्येक परगने में एक अमीन, एक दयालु शिकदर, एक खजांची, एक हिंदी लिपिक और एक फारसी लिपिक नियुक्त किया। उसने अपने कर्मचारियों को प्रत्येक उपज के बाद भूमि की नाप का आदेश दिया जिससे वे नाप के अनुसार और उपज के अनुपात में राजस्व वसूल करें। उसने निर्धारित किया कि कृषक को उपज का एक भाग तथा मुकद्दम को उसका आधा भाग दिया जाए। राजस्व उपज की प्रकार के अनुसार लिया जाने लगा तथा बेचारे कृषक मुकद्दमों, चौधरियों तथा आमिलों के अत्याचारों से बच गए। शेरशाह ने कृषकों को राज्य की संपन्नता का मुख्य आधार माना। अतः उसने उन्हें हर प्रकार से संतुष्ट रखने का भरसक प्रयत्न किया।

शेरशाह के शासनारूढ़ होने के पूर्व प्रत्येक परगने में एक कानूनगो रहता था जिससे पूर्व की, वर्तमान और भविष्य की अनुमानित उपज का ब्यौरा ज्ञात हो सकता था। उसने प्रत्येक सरकार में एक शिकदरे-शिकदरान और एक मुंसिफे- मुंसिफान की नियुक्ति की। इन्हें सरकार के आमिलों के व्यवहार एवं जनता के आचरण पर नियंत्रण रखने का मुख्य कर्तव्य सौंपा गया। उन्हें आदेश दिया गया कि वे न तो आमिलों को जनता को कष्ट देने दें और न उन्हें राजस्व में चोरी करने का अवसर दें। शिकदरे-शिकदरान को आमिलों के सीमा संबंधी झगड़ों को तय करने का भी अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें सरकार में पूर्ण शांति एवं सुव्यवस्था स्थापित रखने के लिए भी उत्तरदायी ठहराया गया। कृषक राजस्व अदा करने में कुछ उपद्रव और अशांति उत्पन्न करने की चेष्टा न कर सकें, इसलिए अधिकारियों को उनका बलपूर्वक दमन करने का अधिकार दिया गया।

शेरशाह प्रतिवर्ष अथवा प्रति दूसरे वर्ष अपने कर्मचारियों को एक स्थान से

दूसरे स्थान में बदल दिया करता था। इस संबंध में उसका कथन था कि "मैंने बड़ी छान-बीन और बड़े सोच-विचार के बाद निष्कर्ष निकाला है कि एक जिले में शासन करने के कार्य से अन्य कोई कार्य एक राजकर्मचारी के लिए अधिक लाभप्रद नहीं है। इस कारण मैं अपने पुराने और स्वामिभक्त सेवकों को जिलों में शासकों के रूप में पर्याप्त लाभ उठाने के लिए भेजता हूं, किंतु मैं चाहता हूं कि मेरे सारे सेवकों को यह लाभ बारी बारी से प्राप्त हो सके। इस कारण मैं उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजकर लगभग सब सेवकों को अधिक से अधिक लाभ उठाने का अवसर देता हूं।"

सैन्य संगठन

उसने एक विशाल राजकीय सेना का भी संगठन किया जिसे उसने विभिन्न टुकड़ियों में विभक्त कर इन्हें राज्य की बड़ी बड़ी छावनियों में स्थित किया। ये टुकड़ियां बारी-बारी से राजधानी से उसके निरीक्षण के हेतु आया करती थीं। उसके सैनिकों की संख्या बड़ी थी और उनकी संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि होती जाती थी। उसकी सेना का मुख्य कार्य राज्य में विद्रोहों का दमन करना, विद्रोही जमींदारों को नियंत्रित रखना, राज्य की सीमाओं के विस्तार के लिए नए नए क्षेत्रों को विजित करना था। उसकी सेना में डेढ़ लाख घुड़सवार, 25 हजार पदाति, अनेक बंदूकची और बहुसंख्यक तीरंदाज थे। ये सैनिक प्रत्येक क्षण उसके साथ युद्धों में जाने के लिए तत्पर रहते थे।

इसके अतिरिक्त उसके सामंतों के पास भी विशाल सेनाएं थीं जो आवश्यकतानुसार शेरशाह की सेवा के लिए उपस्थित की जाती थीं। उसके हैबत खान नियाजी नामक एक सामंत के पास जिसे सम्राट ने आजम हुमायूं की उपाधि से विभूषित किया था, 30,000 घुड़सवार थे। इनकी सहायता से उसने रोहतास के दुर्ग के आसपास के और बालनाथ के समीप के सारे विद्रोहियों का दमन किया और सक्खड़ प्रदेश एवं कश्मीर को उपद्रवियों से बचाए रखा। उसके एक अन्य सेनापति फाथजंग खान के पास भी दिपालपुर और मुलतान के दुर्गों में स्थित विशाल सैनिक टुकड़ियां थीं। शेरशाह के कोष का एक मुख्य भाग मुलतान के दुर्ग में गड़ा हुआ था। उसका प्रसिद्ध सेनापति हमीद खान कक्कड़ मिलवत के दुर्ग में नायक था। इस दुर्ग को सुलतान बहलोल लोदी के समय में तातार खान यूसुफखैल ने बनवाया था और जहां हमीद के पास एक विशाल सैनिक टुकड़ी थी। इसी सेना की सहायता से उसने नगरगोट, ज्वाला, धिधावल और जम्मू की पहाड़ियों के सारे दुर्गों की इतनी

सुव्यवस्था से रक्षा की कि यहां के सारे विद्रोह शांत कर दिए गए और यहां पहाड़ी जातियों से बिना किसी कठिनाई के राजस्व प्राप्त होने लगा।

विद्रोहियों का दमन

उसने मसनदे आली खवास खान को सरहिंद की सरकार जागीर के रूप में प्रदान की। उसने इस सरकार के शासन की देखरेख का उत्तरदायित्व अपने सेवक मलिक भगवंत को सौंप दिया और दिल्ली को उसकी राजधानी निर्धारित कर दिया। उसके अधीनस्थ उसने मियां अहमद खान सरवानी को अमीन, आदिल खान को शिकदर एवं हातिम खान को फौजदार नियुक्त किया। जब संभल की सरकार का मुखिया वहां के नायक नासिर खान के अत्याचारों से पीड़ित होकर भाग गया तो शेरशाह ने मसनदेआली ईसा खान को वहां भेजा जो मसनदेआली हैबत खान कालकापुर सरवानी का पुत्र था और जिसे खाने आजम की उपाधि दी गई थी और जो सुलतान बहलोल और सिकंदर के समय में इन सुलतानों का प्रमुख मंत्री था। उसने हैबत खान के पुत्र को विदा करते समय कहा—"मैंने कांत, गोला तथा तिलहर के परगने तुम्हारे परिवार और पुराने अश्वारोहियों के गुजारे के लिए दे दिए हैं। तुम पांच हजार नए अश्वारोही भर्ती करो और इन्हें लेकर संभल जाओ और वहां के उपद्रवों को शांत करो, उपद्रवी जमींदारों को कठोर दंड दो और वहां पूर्ण सुव्यवस्था की स्थापना करो।"

कहा जाता है कि जब मसनदेआली ईसा खान, जो वीरता और शौर्य में किसी सिंह से कम न था, संभल की सरकार में पहुंचा तो उसने सैनिक बल से समस्त उपद्रवी जमींदारों का इतनी सफलता से दमन कर दिया कि वे सुलतान शेरशाह के पूर्ण स्वामिभक्त बन गए थे। जब ईसा खान ने उनके प्रिय जंगलों को कटवाने का आदेश दिया तब उन्होंने कोई आपत्ति न प्रकट की और स्वयं अपने हाथ से उन प्रिय जंगलों को काट डाला जिनसे वे बच्चों की भांति स्नेह करते थे। उन्होंने अपने अशांतिपूर्ण कार्यों के लिए खेद प्रकट किया, वे शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे और सहर्ष सरकारी कोष में राजस्व जमा करने लगे। शेरशाह ईसा खान की इस सफलता से अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने उसकी और मियां अहमद की प्रशंसा करते हुए कहा—"ईसा खान और मियां अहमद जैसे सरवानी सूरमाओं के साहस के कारण मुझे दिल्ली से लखनऊ तक के क्षेत्रों में किसी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं रहा है।"

इसी प्रकार कन्नौज के शिकदर बैरक नियाजी ने मालकोन साह के परगनों

के उपद्रवियों एवं डाकुओं को इतनी कठोरता से दंडित किया कि उसके समस्त क्षेत्रों में फिर कभी किसी को विद्रोह करने का साहस न हुआ। कहा जाता है कि उसने कन्नौज के लोगों को इतना आतंकित कर दिया था किसी भी व्यक्ति को अपने घर में लोहे का कोई शस्त्र या तलवार या बाण या कमान या बंदूक रखने का साहस न होता था। उनके घरों में अब खेती के औजार या खाने पकाने के बर्तन ही रह गए थे। जब कभी वह किसी मुखिया को अपने दरबार में बुलवाता था तो वह भागकर उसकी सेवा में उपस्थित होता था। कहा जाता है कि इन क्षेत्रों के कृपक उसके कठोर शासन से इतने भयभीत हो गए थे कि वे ठीक समय पर और ठीक मात्रा में राजस्व सरकारी कोष में जमा करने के अभ्यत हो गए थे।

यह भी कहा जाता है कि वह बारी बारी सैनिकों और सरदारों को अवकाश का लाभ उठाने तथा युद्धों का कष्ट झेलने का अवसर दिया करता था। जो सैनिक युद्ध में विजयश्री पाकर राजधानी लौटते थे, उन्हें वह अपनी जागीरों में विश्राम करने के लिए कुछ समय के लिए भेज देता था। उनके स्थान पर जागीरों में विश्राम करने वाले सैनिकों को बुलाकर युद्ध में भेज देता था।

न्यायालय, सड़क और सराय

उसने प्रत्येक बड़े बड़े नगर में न्यायालयों की स्थापना की। उसने प्रत्येक मार्ग में यात्रियों की सुविधा के लिए दो दो कोस की दूरी पर एक एक सराय बनवाई। उसने एक बहुत विस्तृत मार्ग पूरब में बंगाल के सागर तट पर स्थित सोनार गांव नामक नगर से पंजाब में स्थित रोहतास के दुर्ग तक बनवाया। इस मार्ग पर उसने ऐसी अनेक सरायें बनवाईं। उसने अन्य मार्ग आगरा से दक्षिण की ओर बुरहानपुर तक, आगरा से जोधपुर और चित्तौड़ तक तथा लाहौर से मुलतान तक बनवाए। उसने विभिन्न मार्गों पर लगभग 1700 सरायें बनवाईं।

प्रत्येक सराय में उसने हिंदुओं और मुसलमानों के लिए पृथक पृथक आवास एवं भोजन का प्रबंध किया। प्रत्येक सराय के द्वार पर यात्रियों के पीने के लिए पानी से भरे मटके रखे रहते थे। हिंदू यात्रियों को भोजन खिलाने, उनके लिए गर्म एवं ठंडे जल की व्यवस्था करने, उन्हें बिस्तर देने और उनके घोड़ों को चारा खिलाने के लिए प्रत्येक सराय में हिंदू सेवक और ब्राह्मण रहते थे। इन सरायों में आनेवाले प्रत्येक यात्री को सरकार की ओर से निःशुल्क भोजनादि मिलता था। इन विश्रामालयों के आसपास गांव बसाए गए। प्रत्येक सराय के मध्य में एक कुआं और एक पक्की मस्जिद की व्यवस्था की गई। प्रत्येक मस्जिद में एक इमाम और एक मुअज्जम

की नियुक्ति की गई। यात्रियों की वस्तुओं की देखरेख के लिए एक सराय में अनेक चौकीदार भी रखे गए और इन सब सरकारी कर्मचारियों के कार्यों पर नियंत्रण रखने के लिए सराय का नायक अथवा शहना नियुक्त किया गया। इन सब कर्मचारियों के गुजारे और वेतन आदि की व्यवस्था के लिए एक सराय के साथ कई एक गांवों का राजस्व सम्मिलित कर दिया गया। प्रत्येक सराय में दो घोड़े भी रखे जाते थे जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर राजधानी में अविलंब समाचार भेजे जा सकें। उसने सड़कों के दोनों ओर फलदार और छायादार वृक्ष लगवाए जिससे गर्मी के दिनों में भी यात्री पेड़ों की छाया में लेट सकें।

शेरशाह ने लाहौर से खुरासान को जानेवाले मार्ग पर रोहतास का सुप्रसिद्ध दुर्ग भी बनवाया। यह बालनाथ जोगी की पहाड़ी के समीप, बेहत नदी से चार कोस की दूरी पर तथा लाहौर के दुर्ग से 60 कोस की दूरी पर है। कश्मीर और सक्खड़ों के क्षेत्रों में होनेवाले विद्रोहों के दमन के लिए उसने इस दुर्ग को बहुत ही अधिक शक्तिशाली बनाया। कहा जाता है कि इस दुर्ग की दृढ़ता की समता करनेवाला भारत में अन्य कोई दुर्ग न था और शेरशाह ने इसके निर्माण में अपार धन व्यय किया। दुर्ग के निर्माण के समय राजकीय कर्मचारियों को एक-समान पत्थरों का मिलना कठिन हो गया। उन्होंने सम्राट की सेवा में प्रार्थना प्रेषित की कि हमें दुर्ग के लिए पत्थर मिलते नहीं और यदि मिलते हैं तो उनका मूल्य बहुत अधिक है। शेरशाह ने उन्हें आदेश दिया कि किसी भी दशा में दुर्ग का निर्माण स्थगित न किया जाए और यदि उन्हें एक पत्थर के लिए उसके तोल के बराबर के तांबे के सिक्के भी देने पड़ें तो पत्थर ले लेने चाहिए। अंत में, शेरशाह के कर्मचारियों ने दुर्ग को पूरा करवाने में सफलता प्राप्त कर ली। शेरशाह ने स्वयं इसका उद्घाटन एवं निरीक्षण किया। उसने इसका नाम छोटा रोहतास रखा। तारीखे-दाऊदी में लिखा है कि शेरशाह ने इसे नए रोहतास का नाम दिया और इस पर उसने अस्सी करोड़ पांच लाख पांच हजार और दो दास या बहलोली व्यय किए। इस व्यय का विवरण दुर्ग के मुख्य द्वार पर अंकित है।

दिल्ली का दुर्ग

शेरशाह ने दिल्ली की पुरानी राजधानी को, जो यमुना से बहुत दूर थी, नष्ट करवा दिया और इसके स्थान पर यमुना के तट पर नई राजधानी का निर्माण करवाया। उसने इसमें दो ऊंचे और सुदृढ़ दुर्ग बनवाए। एक में दिल्ली के शासक का कार्यालय केंद्रित किया गया और दूसरे में शाही सैनिक रखे गए। उसने इनके चारों ओर एक

दीवार बनवाई और छोटे दुर्ग में पत्थर की एक ऐसी सुंदर जामा मस्जिद बनवाई जो नक्काशी और सुंदरता के लिए आज भी प्रसिद्ध है। इन दुर्गों का निर्माण अभी हो ही रहा था कि अभाग्यवश शेरशाह की मृत्यु हो गई।

शेरशाह ने कन्नौज के पुराने नगर एवं पुरानी राजधानी को भी उजड़वा दिया और यहां एक पक्की ईंटों का दुर्ग बनवाया। जिस स्थान पर उसने हुमायूं को 1540 ईस्वी में पराजित किया था, वहां भी उसने शेरपुर नामक एक नगर बसाया।

इन दुर्गों की महत्ता के संबंध में शेरशाह ने एक बार स्वयं कहा था–

''यदि मैं जीवित रहा, तो प्रत्येक सरकार में एक उचित स्थान पर मैं ऐसा दुर्ग बनवाऊंगा जहां से उपद्रवियों के अत्याचारों से जनसाधारण को सरलतापूर्वक सुरक्षित रखा जा सके। मैं समस्त मिट्टी की बनी हुई सरायों को गिरवाकर उनके स्थान पर ईंटों की सराय बनवाना चाहता हूं। ऐसी सरायें न केवल यात्रियों के विश्राम का ही केंद्र होंगी, वरन उनकी संपत्ति भी इन डाकुओं और लुटेरों से पूर्णतया सुरक्षित रहेगी।''

मार्ग की सुरक्षा

मार्गों और अन्य स्थानों को चारों ओर से डाकुओं से सुरक्षित रखने के लिए उसने बड़े कठोर एवं उत्तम नियम बनाए। उसने प्रत्येक आमिल और शिकदार को सचेत कर दिया कि यदि उनके क्षेत्रों में कहीं चोरी अथवा डाके की घटना घटित हुई और अपराधियों का पता न चला तो उन्हें तत्काल समीप के गांवों के मुखियों को बंदी कर लेना चाहिए और इन्हीं मुखियों से सारी क्षति की पूर्ति करवा लेनी चाहिए। यदि मुखियों ने अपराधियों का पता लगाने में सहायता दी तो उन्हें दंड न देकर अपराधियों को उचित दंड दिए जाने के लिए उसने अधिकारियों को निर्देश प्रेषित किए। चोरों, डाकुओं और हत्यारों को शरीयत के अनुसार कठोर दंड दिए जाते थे। कहा जाता है कि हत्यारों का पता न लगाने पर मुखियों को स्वयं प्राणदंड का भागी बनना पड़ता था, किंतु यदि वे हत्यारों को पता लगाने में शिकदरों अथवा आमिलों की सहायता करते थे तो उन्हें दंड के स्थान पर विशेष पुरस्कार दिए जाते थे। शेरशाह ने इस कारण इन कठोर नियमों को लागू किया था क्योंकि वह यह जानता था कि गांवों में चोरी, डाके एवं हत्याएं मुखियों के सहयोग से ही हो सकती थीं। यदि किसी शिकदर को यह ज्ञात हो जाता कि गांवों के मुखिये अपराधियों को शरण देते हैं तो उन्हें इतने कठोर दंड दिए जाते थे कि पुनः वे कभी इस प्रकार का अपराधपूर्ण कार्य करने का साहस न करते थे। तारीखे दाऊदी में इस प्रकार गांवों से संबंधित दो

अपराधपूर्ण घटनाओं का उल्लेख मिलता है। एक बार थानेश्वर के पड़ाव से रात्रि में शेरशाह का एक घोड़ा चोरी चला गया। इसके लिए 50 कोस तक की दूरी से जमींदारों को बुलवाया गया। उन्हें शेरशाह ने चेतावनी दी कि यदि तीन दिन के अंदर वे चोर और घोड़े का पता न लगा सके तो उन सबको मार डाला जाएगा। उन्होंने तत्काल चोर को ढूंढ़ निकाला, जिसे फांसी पर चढ़ा दिया गया। दूसरी घटना एटा में घटी। भूमि संबंधी झगड़े में एक कृषक की हत्या कर दी गई थी। बहुत खोज के बाद भी जब हत्यारे का पता न लगा तो शेरशाह ने अपने एक सैनिक को हत्या के स्थान पर एक पेड़ को काटने का आदेश दिया। एक व्यक्ति ने उस पेड़ को काटने से मना किया। उसे बंदी कर लिया गया और अंत में उसके द्वारा तीन दिन के अंदर हत्यारे का पता लग गया जिसे तत्काल मौत के घाट उतार दिया गया।

गांवों की सुरक्षा

शेरशाह और इस्लामशाह के शासनकाल में मुकद्दम अपने गांव की सीमाओं की सुरक्षा के लिए और गांवों में होने वाले सारे अपराधों के दमन के लिए उत्तरदायी थे। उन्हें अपराधियों को दंड देने का पूर्ण अधिकार था। उसने सारे नायकों के पास आदेश भेजे कि वे यात्रियों और व्यापारियों की सुविधाओं का विशेष ध्यान रखें तथा चोरों, डाकुओं और जमींदारों के अत्याचारों से उन्हें सुरक्षित रखें। यदि कोई यात्री मार्ग में ही मर जाता तो उसकी वस्तुओं को या तो उसके उत्तराधिकारियों को दे दिया जाता या उन्हें निर्धनों की सहायतार्थ सरकारी कोष में रख दिया जाता था। उसका कोई भी कर्मचारी किसी भी व्यापारी की वस्तुओं का अपहरण नहीं कर सकता था।

आयात-कर

शेरशाह देश में आने वाली सारी विदेशी वस्तुओं पर दो स्थानों पर चुंगी लगाता था। यदि आयात बंगाल की ओर से होता था तो सीकरी गली नामक स्थान पर उनपर चुंगी लगती थी और यदि आयात उत्तर-पश्चिम की ओर से खुरासान के मार्ग से भारत में होता था तो सीमांत पर स्थित चुंगी चौकियों में उनपर एक बार कर लिया जाता था। दूसरी बार इन वस्तुओं पर कर विक्रय के स्थान पर ही लिया जाता था। अन्य किसी कर्मचारी को व्यापारियों से किसी भी स्थान पर कर वसूल करने का अधिकार न था। उसके कर्मचारी व्यापारियों से बाजार के भाव से ही वस्तुएं क्रय कर सकते थे।

कृषि की रक्षा

एक अन्य आदेश द्वारा शेरशाह ने अपने सैनिकों को प्रयाण करते समय कृषकों की फसलों को हानि न पहुंचाने की कठोर आज्ञा दी। प्रयाण करते समय वह स्वयं फसलों को देखता था और उनकी सुरक्षा के लिए उनके चारों ओर घुड़सवार खड़े कर देता था। चलते समय शेरशाह स्वयं एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर सैनिक को दाएं-बाएं देखता था। यदि वह किसी सैनिक को जान-बूझकर किसी फसल को हानि पहुंचाते देख लेता था तो वह स्वयं उसके कान काट देता था और उसके गले में उस कटी हुई फसल की कलियां डाल कर उसे सारी सेना में घुमवाता था। वाकयाते-मुश्तकी और तारीखे दाऊदी का कथन है कि एक बार शेरशाह ने मालवा में प्रस्थान करते समय एक ऊंट के सवार को हरे मटर तोड़ने पर कठोर दंड दिया। उसने उसके नाक में एक सुराख करवा दिया और उसके पैर बंधवा कर उसे सर के बल लटकवा दिया। जब तक सेना प्रस्थान करती रही तब तक वह इसी दशा में सेना के साथ घिसटता गया। इसके बाद पुनः किसी भी सैनिक ने किसी भी फसल को नुकसान पहुंचाने का साहस नहीं किया। यदि मार्ग संकुचित होने के कारण सैनिकों को खेतों में से निकलना पड़ता और इससे किसी भी फसल को हानि पहुंचती तो इसके लिए कृषकों को क्षतिपूर्ति के लिए राजकोष से उचित धन-राशि दी जाती थी। कहा जाता है कि यदि सैनिकों को खेतों के समीप कभी रुकना पड़ जाता तो वे स्वयं फसलों की रखवाली करते थे जिससे कोई अन्य व्यक्ति भी इनको हानि न पहुंचा सके और उसके अपराध के लिए शेरशाह इनको दंडित न करे।

जब कभी वह शत्रु के क्षेत्रों को विजित कर लेता था, तब उसके सैनिक वहां के कृषकों को न तो लूट सकते थे और न उन्हें दास बना सकते थे। वह कहा करता था—"कृषक बेचारे निर्दोष हैं। वे उसी की अधीनता मानते हैं जो उनपर शासन करने की शक्ति रखता हो। यदि मैंने उनपर सख्ती भी की तो वे खेत छोड़कर जंगलों में भाग जाएंगे। पुनः मुझे इन क्षेत्रों को बसाने और संपन्न करने में बड़ा समय लगेगा।" कहा जाता है कि शत्रु-देश के निवासी भी उसकी दानशीलता, न्यायप्रियता और उदारता से इतने प्रभावित थे कि वे समय समय पर उसकी सेना को रसद आदि स्वयं पहुंचाते थे।

दानशीलता

शेरशाह दान देने में कभी संकोच न करता था। वह सारा दिन दान देने और उपाधियों के वितरण में व्यस्त रहता था। भारत के सिंहासन को प्राप्त करने में उसके इस

गुण ने उसे बड़ी सहायता दी। जब कभी उसके सैनिक आकस्मिक आपत्ति के कारण असहाय बन जाते तो वह उन्हें सब प्रकार की सहायता देकर संपन्न रखने की चेष्टा करता था। प्रत्येक दिन वह अनेक निर्धन व्यक्तियों को दान देकर उन्हें अपना ऋणी बनाता था। उसका भोजनालय वड़ा विशाल था और कई हजार सैनिक एवं कर्मचारी जिन्हें फियाही कहते थे, इसमें एक साथ भोजन करते थे। शेरशाह का यह एक सार्वजनिक आदेश था कि कोई भी भूखा सैनिक, फकीर और कृषक मेरे भोजनालय से निःशुल्क भोजन प्राप्त कर सकता था। उसने कई स्थानों पर राजकीय भोजनालय स्थापित कर रखे थे जहां से प्रतिदिन निर्धनों को निःशुल्क भोजन मिलता था। उसके इन भोजनालयों का दैनिक व्यय 500 अशर्फी (स्वर्ण सिक्का) था।

शेरशाह को पता चला कि सुलतान इब्राहिम के समय से कुछ इमामी तथा अन्य धार्मिक पुरुषों ने आमिलों को घूस देकर ऐसी भूमि पर अधिकार कर रखा है जो वास्तव में उनकी संपत्ति नहीं है। अतः उसने उनकी जागीरें छीन लीं और उचित जांच के बाद सबको उतनी भूमि दी जितनी कि सबको आवश्यकता थी और जितनी उनकी अपनी चली आ रही थी। उसने राजकोष से अनाथों, पंगुओं, विधवाओं, रोगियों, अंधों, दुर्बलों और वृद्ध व्यक्तियों को वृत्तियां प्रदान करके उन्हें सहायता दी। उसने इमामों के भ्रष्टाचारों को रोकने के लिए उन्हें मस्जिदों के गुजारे के लिए न तो धन दिया और न जागीरें ही दीं। इसके स्थान पर उसने विशेष मुंशियों की नियुक्ति की जिन्हें मस्जिदों से संबंधित व्यवस्था का कार्य सौंपा गया।

उसके आदेश लिखित रूप में हरकारों द्वारा परगनों के शिकदरों के पास ले जाए जाते थे। सर्वप्रथम शिकदर फर्मान के अनुसार परगनों के धार्मिक पुरुषों को वेतन देते थे और उसके बाद अन्य शासन संबंधी आदेशों का पालन करते थे। शेरशाह इमामों के पास संधि-फर्मान भेजने के पक्ष में न था। वरन वह उन्हें धन की वृत्तियां शिकदरों द्वारा दिलवाने के पक्ष में था। वह प्रायः कहा करता था—"राजाओं को इमामों को धन देना चाहिए, क्योंकि हिंदुस्तान के नगरों की संपन्नता इन इमामों, धार्मिक पुरुषों और शेखों पर ही निर्भर है। ये लोग सम्राट् की सेवा में स्वयं उपस्थित नहीं हो सकते हैं, अतः उन्हें बिना मेरी सेवा में उपस्थित हुए ही धन पाने का अधिकार है जिससे कि वे मेरे प्रशंसक हों तथा वे दूसरे यात्रियों को हर प्रकार से सहायता देकर और लोगों को धर्म की शिक्षा देकर तथा अपने क्षेत्र में नमाज आदि की उचित व्यवस्था करके मुझे अत्यंत संतुष्ट रख सकें। इसके अतिरिक्त मेरा विचार है कि मैं इन धार्मिक पुरुषों को प्रसन्न करके ही ईश्वर की दृष्टि में सम्मान एवं उच्च स्थान प्राप्त कर सकता हूं।"

अफगानों का सम्मान

उसकी सेवा में अफगानिस्तान से आनेवाला प्रत्येक अफगान अप्रत्याशित धन पाता था। वह धन देते समय उससे कहता था—''भारत के राज्य का यह तुम्हारा भाग है। तुम इसे लेने के लिए प्रतिवर्ष मेरे पास आया करो।'' रोह (उसके पुरखों का मूल निवास स्थान) में रहने वाले उसके परिवार के सूर सरदारों के पास प्रतिवर्ष वह अपार धन राशि भेजा करता था। कहा जाता है कि उसके शासनकाल में रोह अथवा हिंदुस्तान में रहने वाले किसी भी अफगान के पास धन का अभाव न था तथा सारे अफगान सरदार और सैनिक धनी तथा संपन्न बन गए थे। सुलतान बहलोल और सिकंदर लोदी के समय से ही अफगान सरदारों को राज्य की ओर से निर्धारित जागीरें और धन की वृत्तियां मिलने लगीं। इन वृत्तियों को वे प्रतिवर्ष राजकोष से प्राप्त करते थे। इस प्रथा को शेरशाह और उसके उत्तराधिकारियों ने भी बराबर चलाए रखा।

शेरशाह के पास 5,000 हाथी भी थे। उनके निजी घोड़ों की संख्या का अनुमान लगाना कठिन था, क्योंकि उनमें प्रायः वृद्धि ही होती रहती थी। सरायों में 3400 घोड़े एक स्थान से दूसरे स्थान तक समाचार पहुंचाने के लिए हर समय तैयार रहते थे। उसके राज्य में 1,13,000 गांव सम्मिलित थे। उसने प्रत्येक परगने में एक शिकदार को नियुक्त किया था।

उसकी सेना में बहुसंख्यक सैनिक थे और वह इनकी संख्या में प्रतिदिन वृद्धि ही करता रहता था। जनता के लिए बनाए गए नियमों के पालन की देखरेख के लिए उसने गुप्तचर नियुक्त किए थे। उसके गुप्तचर बड़े विश्वासपात्र होते थे तथा प्रत्येक सामंत की सेना के साथ, प्रत्येक सरकार की राजधानी में तथा प्रत्येक परगने में नियुक्त रहते थे। ये सरदारों, अधिकारियों, सैनिकों यहां तक कि जनसाधारण के कार्यों की दैनिक सूचना यथासमय और बिना किसी प्रकार का झूठ मिलाए सम्राट के पास अविलंब भेजा करते थे। शेरशाह जानता था कि सरदार, नायक और कर्मचारी राज्य के विभिन्न भागों में घटित होनेवाली घटनाओं की ठीक सूचना केंद्रीय सरकार के पास नहीं भेजते थे। इस कारण शासन की सुव्यवस्था, राज्य की संपन्नता और प्रजा की शांति के लिए उसने इस विभाग की कुशल स्थापना आवश्यक समझी। इन गुप्तचरों की सहायता से वह राज्य में होने वाले समस्त अन्यायों का उचित समय पर खंडन कर सका। जब शेरशाह ने शुजाअत खान को मालवा की जागीर देने का विचार किया तो उसके मंत्रियों ने शुजाअत खान को परामर्श देते हुए कहा—''अब वह समय आ गया है जब आप जैसे स्वामिभक्त अफगान सरदारों को अपनी जागीरों का उचित भाग अपने अफगान सैनिकों को देना चाहिए। जागीरों के राजस्व का

एक समुचित भाग अपने लिए रख लेने के बाद आपको शेष आय अपने सैनिकों को बांट देनी चाहिए।" शुजाअत खान ने अपनी जागीर में जाकर कुछ दिनों तक तो दरबार के मंत्रियों के उपरोक्त परामर्श के अनुसार जागीरों का प्रबंध किया, किंतु कुछ समय के बाद उसने लोलुपतावश सैनिकों के भाग का भी अपहरण प्रारंभ कर दिया। उसके इस व्यवहार से उसके दो हजार प्रसिद्ध अफगान अश्वारोही और पदाति असंतुष्ट हो गए। इन सैनिकों ने शेरशाह के पास शुजाअत खान के दुर्व्यवहार की शिकायत करने का विचार किया, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि शेरशाह, जो न्याय करने में अपने निकट संबंधियों का भी पक्षपात नहीं करता, उनके अधिकारों की रक्षा के लिए, उनकी उचित प्रार्थना को सुनेगा और शुजाअत खान को उचित दंड देगा। उन्होंने शुजाअत खान और उसके कुप्रबंधक कर्मचारियों के भ्रष्टाचार के विरुद्ध सामूहिक रूप में सम्राट के पास प्रार्थना पत्र भेजना निश्चित किया और इस प्रयास के फलस्वरूप शुजाअत खान की ओर से उनके साथ होनेवाले अत्याचारों का सामना करने के लिए भी उन्होंने एक-दूसरे का साथ न छोड़ने का दृढ संकल्प किया।

इस निश्चय के बाद वे शुजाअत खान की सेना से अलग हो गए और एक पड़ाव की दूरी पर जाकर रुक गए। वहां जाकर उन्होंने पहले अपना एक दूत शुजाअत खान के पास भेजा और उससे कहा—"आपके मंत्री हमें न तो उचित अधिकार देते हैं और न वे हमें उन लाभों का प्रयोग करने देते हैं जो शेरशाह ने हमें प्रदान किए हैं। हमारा सम्राट शेरशाह यह कभी सहन नहीं कर सकता कि उसके सेनापति उनके सैनिकों के साथ कपट का व्यवहार करें। उसकी तो इच्छा है कि सरदार सैनिकों को अधिक से अधिक धन और उपहार पाने का अवसर प्रदान करें और उन्हें मासिक वेतन निश्चित समय से और निर्धारित राशि के अनुसार दें। यदि सेनापति सैनिकों के साथ इस प्रकार का व्यवहार नहीं करते हैं तो सैनिक स्वामिभक्ति और सहृदयतापूर्वक उनकी अर्थात शेरशाह की सेवा नहीं कर सकते हैं। यदि आप हमारे अधिकारों का अपहरण करते हुए हमें पीड़ित रखेंगे तो हम निश्चय ही आपके शत्रु होकर आपके विरुद्ध विद्रोह कर देंगे। इसके फलस्वरूप आपकी सेना अव्यवस्थित और दुर्बल हो जाएगी और इससे न केवल आपको ही कलंकित होना पड़ेगा वरन आपके मंत्रियों को भी अपार क्षति उठानी पड़ेगी।"

जब शुजाअत खान को इन सैनिकों के इस व्यवहार एवं प्रार्थना की सूचना मिली तब तो उसने अपने मंत्रियों से इस विषय में निर्णय लेने के लिए विचार-विमर्श करते हुए कहा, "आपके दो हजार सैनिकों ने आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने का विचार किया है जब कि आपके संरक्षण में 10,000 घुड़सवार हैं। यदि आप इन

दो हजार विद्रोही सैनिकों के सुझाव के अनुसार उनकी मांग को पूरा करते हैं तो लोग यह समझेंगे कि आपने शेरशाह के भय से ऐसा किया है। इसके फलस्वरूप आपके अन्य अधिकारी आपको दुर्बल समझकर आपकी आज्ञाओं का उल्लंघन करने का साहस करने लगेंगे और सारे प्रांत में आपकी सत्ता को असहनीय क्षति पहुंच जाएगी। हमारी समझ से तो आपको इस समय कठोरता से काम लेना चाहिए। आपको इन विद्रोही सैनिकों को कठोर दंड की चेतावनी भेजनी चाहिए जिससे उनके दिमाग ठीक हो जाएं और वे आपकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए तैयार हो जाएं। इसके अतिरिक्त आपके कठोर व्यवहार से ही अन्य सरदार भी इस प्रकार के विद्रोहात्मक कार्यों का पुनः साहस न कर सकेंगे।"[1]

शुजाअत खान की आंखें लोलुपता के कारण अंधी थीं और उसने शेरशाह की न्यायप्रियता और दृढ़ता का विचार न कर अदूरदर्शिता का परिचय दिया। उसने अमीरों के परामर्श के अनुसार उन 2,000 सैनिकों के पास बड़ा कठोर उत्तर भेजा। उसने उन्हें तत्काल शांतिपूर्वक लौट आने का आदेश दिया और कहा कि अन्यथा वह उन सबको मृत्युदंड का भागी घोषित कर देगा। सैनिकों ने इस कठोर उत्तर को पाते ही आगामी कार्रवाई के लिए परस्पर सभा की। उनमें से कुछ ने शेरशाह जैसे न्यायी शासक के पास तत्काल जाकर और शुजाअत खान के दुर्व्यवहार की शिकायत करने का प्रस्ताव अन्य साथियों के समक्ष रखा, किंतु इन दूरदर्शी एवं बुद्धिमान अफगान सैनिकों ने, जो शेरशाह की प्रवृत्ति से भली प्रकार परिचित थे, निश्चित किया कि हमें स्वयं शेरशाह के पास नहीं जाना चाहिए। सम्राट ने उन्हें शुजाअत खान के नियंत्रण में रहने के लिए दक्षिणी भारत में भेजा था। इस कारण बिना उसकी आज्ञा से उन्हें इस स्थान को नहीं छोड़ना चाहिए। अतः उन्होंने अपना एक दूत न्यायी शेरशाह के दरबार में भेजा जिसने सम्राट को उनकी शिकायतों से अवगत कराया। उन्होंने निश्चित किया कि जब तक शेरशाह की उनके संबंध में आज्ञा न आ जाए, वे मालवा में रुककर समस्त अव्यवस्था का दमन करने को तत्पर रहेंगे।

अंत में शेरशाह ने उनके असंतोष की बातों को अपने गुप्तचरों द्वारा बड़ी सावधानी से सुना और उसने इन सैनिकों के असंतोष को दूर करने का निश्चय कर लिया। सैनिकों के दूत के शेरशाह के दरबार में पहुंचने के पूर्व ही उसके गुप्तचर ने उसे शुजाअत खान और इन सैनिकों के पारस्परिक संघर्ष से परिचित करवा दिया था। शेरशाह ने इस घटना की सूचना पाते ही शुजाअत खान के व्यवहार पर खेद

---

1. तारीखे शेरशाही—अब्बास सरवानी

प्रकट किया और क्रोध में आकर शुजाअत खान के दूत को अपने सामने बुलवाया। उसने उससे कहा—"तुम शुजाअत खान को लिख दो कि एक समय तुम भी बड़े निर्धन थे। मेरी कृपा से तुम आज बहुत धनी हो गए और मैंने तुम्हारे नियंत्रण में उन अफगान सैनिकों को रखा है जो वंश और कुल के आधार पर तुमसे बहुत ऊंचे हैं। तुम इतना अधिक वेतन पाने पर भी अपने भाग्य पर संतोष नहीं करते हो और बेचारे सैनिकों के वेतन का अपहरण करना चाहते हो। ऐसा करने में न तो तुम ईश्वर से डरते हो और न ही मेरे कठोर नियमों को कुछ महत्व देते हो जिन्हें मैंने सैनिकों की सुविधा और सामान्य प्रजा के सुख के लिए लागू किया है। मुझे खेद है कि तुम्हें अपने दुर्व्यवहार पर लज्जा नहीं आती। यदि तुम मेरे कृपापात्र न होते तो मैं तुम्हारी खाल उधड़वा देता लेकिन मैं तुम्हारा यह पहला अपराध क्षमा कर रहा हूं। अतः इन सैनिकों के दूत के पहुंचने के पूर्व ही तुम इनकी मांगों को पूरा कर दो, नहीं तो यदि उनके वकील ने आकर मुझसे शिकायत की तो मुझे कुछ न कुछ न्याय करना ही पड़ेगा। ऐसी दशा में मैं तुम्हारी सारी जागीरें छीन लूंगा और तुम्हें बंदी करवाकर कठोर दंड दूंगा। किसी सरदार का यह कर्तव्य नहीं है कि वह शासक की आज्ञा का उल्लंघन करे, क्योंकि इससे जहां सरदार को स्वयं हानि उठानी पड़ती है वहां सम्राट के सम्मान और सत्ता को भी इससे अपार क्षति पहुंचती है।"[1]

जब शुजाअत खान के पास अपने दूत द्वारा इस आशय का पत्र पहुंचा तब उसे अपने व्यवहार पर बड़ा खेद हुआ। उसे सम्राट की चेतावनी से डर भी लगा और उसने अपने मंत्रियों को फटकारते हुए उनसे कहा—"तुम्हारे परामर्श ने न केवल मुझे लज्जित किया है, वरन मेरे सम्मान को भी असहनीय क्षति पहुंचाई है। अब मैं कौन-सा मुंह लेकर सम्राट की सेवा में जाऊं।"

इसके बाद वह स्वयं इन दो हजार सैनिकों के पड़ाव में गया, अपने दुर्व्यवहार के लिए उनसे क्षमा मांगी, उनसे उचित व्यवहार करने की अनेक सौगंधें खाईं और अंत में उन्हें उपहार आदि देकर अपनी सेना में पुनः वापस आने के लिए राजी किया। कहा जाता है कि जब शुजाअत खान के इस उत्तम व्यवहार की सूचना सैनिकों के दूत को मिली, तब वह दरबार में पहुंचने के स्थान पर शुजाअत खान के पास वापस लौट आया। जब यह दूत शुजाअत खान के पास उपस्थित हुआ तब उसने ईश्वर के प्रति नम्रतापूर्वक कृतज्ञता प्रकट की, निर्धनों में धन और वस्त्रों का वितरण करवाया और इस दूत को उसने एक घोड़ा और एक उत्तम पोशाक पुरस्कार स्वरूप प्रदान किए।

---

1. तारीख-शेरशाही—अब्बास सरवानी

शेरशाह के प्रति भय

इस प्रकार स्पष्ट है कि शेरशाह की सत्ता उसकी उपस्थिति और अनुपस्थिति में सारे अफगान सरदार और सैनिक भक्तिपूर्वक मानते थे। व्यक्तिगत क्षति एवं संपत्ति की हानि के भय से किसी भी व्यक्ति को उसकी आज्ञा का उल्लघन करने का साहस न होता था। कहा जाता है कि उसकी आज्ञा और नियम बड़े कठोर थे और उनका पालन सब के लिए निर्विरोध अनिवार्य था। यदि उसके पुत्र, भाई एवं निकट संबंधी भी उसकी इच्छा के प्रतिकूल व्यवहार करते अथवा राजाज्ञा की अवेहलना करते तो वह उन्हें भी मृत्युदंड देने में लेशमात्र भी संकोच न करता था। फिर भी उसे अफगान जाति पर गर्व था और अफगानों के सम्मान एवं गौरव की वृद्धि के लिए उसने जो प्रशंसनीय प्रयास किए थे, उनके कारण उसके अफगान अनुगामी उसके इतने ऋणी थे कि वे उसके फरमानों का सहर्ष अभिनंदन करते थे और उनके पालन में कोई उदासीनता न दिखलाते थे।

शेरशाह के शासनकाल में आजम हुमायूं नियाजी पंजाब और मुलतान का शासक था और उसके पास 30,000 घुड़सवारों की एक सुदृढ़ सेना थी। शेरशाह के किसी अन्य सरदार के पास इतनी विशाल सेना न थी, परंतु आजम हुमायूं ने कभी सम्राट की आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस नहीं किया। उसने अपने भतीजे मुबरेज खान को रोह के नियाजी प्रदेशों में शासन करने के लिए भेजा। मुबरेज खान ने संभल के सरदार ख्वाजा खिजर संभली से मिट्टी का बना हुआ एक दुर्ग मांगा जो खिजर खान ने सिंध नदी के पूर्व तट पर बनवाया था। खिजर खान ने तत्काल मुबरेज खान की इच्छा का सम्मान करते हुए उसे वह दुर्ग दे दिया। शेरशाह के सरदारों में हमेशा सहयोग एवं पारस्परिक स्नेह की भावनाएं बनी रहती थीं और वे उसकी निरंतर सेवा करने में आनंदानुभव करते थे।

अलादाद संभली नामक एक सैनिक सरदार की पुत्री कोमलता और सुंदरता के लिए संपूर्ण संभली कबीले में विख्यात थी। मुबरेज खान उसकी सुंदरता की गाथा सुनते ही बिना देखे उससे प्रेम करने लगा और अब वह इस लड़की को पाने के लिए व्याकुल हो गया। अपनी शक्ति एवं पद के घमंड में उसने अलादाद के पास एक गुप्तचर भेजा और उससे उसकी पुत्री को मांगा। अफगानों में विशेषकर रोहीला पठानों अथवा रोह के निवासी अफगानों में वंश या कबीले के बड़प्पन का बड़ा महत्व माना जाता है। मुबरेज खान ने, जिसके वंश का स्थान अलादाद के वंश से निम्न था, इस बात की ओर अलादाद के पास दूत भेजते समय ध्यान न दिया था। अलादाद

ने मुबरेज खान के पास उसके दूत द्वारा बड़ी नम्रतापूर्वक यह संदेश भिजवाया— "आपका पद बहुत ऊंचा है और आप एक शक्तिशाली सरदार हैं। आपके अनेक पुत्र हैं और आपके रनिवास में अनेक कुलीन पत्नियां एवं दासियां हैं। आप हिंदुस्तान में उत्पन्न हुए हैं। आपका पालन-पोषण भी इसी देश में हुआ है। आपका शरीर कोमल और स्वभाव विनम्र है। इसके विपरीत मेरे बच्चे रोह में उत्पन्न हुए हैं। इस कारण उनका स्वभाव कठोर है। ऐसी परिस्थिति में मेरे और आपके वंश में संबंध उचित नहीं है, क्योंकि हम दोनों के वंशों में बड़ा अंतर है।"

मुबरेज खान अलादाद के इस उत्तर से आग बबूला हो गया। उसने संभली अफगानों को पीड़ित करना, क्षति पहुंचाना और कष्ट देना शुरू कर दिया, जिससे वे विवश होकर अलादाद की पुत्री से उसका विवाह कर दें। शेरशाह के भय से संभली अफगानों ने मुबरेज खान के सारे अत्याचारों को सहन किया, किंतु जब उनकी सहनशक्ति जवाब देने लगी तो तीन संभली अफगान भाइयों, फरीद, इदरीस और निजाम[1] ने, जो अलादाद के अवैध भाई थे, मुबरेज खान से निवेदन किया, हम तीन भाइयों की अनेक पुत्रियां हैं। आप हमारी किसी भी पुत्री से विवाह कर सकते हैं, किंतु अब आप हम संभलियों को पीड़ित करना छोड़ दीजिए। मुबरेज खान ने उन्हें उत्तर दिया, "मुझे आपकी पुत्रियां नहीं चाहिए, मैं तो अलादाद की पुत्री चाहता हूं।"

जब संभली अफगान सरदारों ने देखा कि मुबरेज खान उन्हें एक ऐसे कार्य के लिए विवश करना चाहता है जिसे वे कभी स्वेच्छा से संपन्न नहीं कर सकते हैं तो उन्होंने साहस करते हुए उससे कहा—"हमारे और आपके वंश के बीच अनेक बार वैवाहिक संबंध स्थापित हुए हैं, किंतु हमारे शुद्ध परिवारों ने ही आपके वंश के शुद्ध परिवारों से इस प्रकार के संबंध किए हैं। जो परिवार अवैध हैं उनका संबंध अवैध परिवारों से ही हो सकता है। यद्यपि आपका पद और स्थान बहुत ऊंचा है और आपके लिए एक अवैध परिवार से संबंध स्थापित करना अशोभनीय है, फिर भी हम तीन भाइयों की माता और आपकी माता दासियां ही थीं। हमने आपको राजवंश से संबंधित देखकर ही आपसे अपनी पुत्री का विवाह करने का विचार किया है, क्योंकि इससे हमारे और आपके परिवारों के बीच की शत्रुता सदैव के लिए समाप्त हो जाएगी, किंतु आपने हमारी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया हे जिसके लिए हमें बड़ा खेद है। हम पुनः आपसे आग्रह करते हैं कि आप ईश्वर से डरते हुए अफगानों

1. ये नाम संदेहास्पद लगते हैं।

की परंपराओं का सम्मान करें। अलादाद एक शुद्ध वंश से संबंधित है और वह कभी अपनी पुत्री आपको नहीं दे सकता। आप चाहे जितने अत्याचार करें किंतु उसे आप इस संबंध के लिए विवश नहीं कर सकते। अतः हम आपसे फिर प्रार्थना करते हैं कि आप इस प्रकार के व्यर्थ मोह का परित्याग कर दें।''

जब मुबरेज खान ने उनकी इन बातों को सुना तो शक्ति, प्रभाव एवं पद के घमंड से वह संभलियों से अत्यधिक रुष्ट हो गया और उसने उन्हें असहनीय ढंग से पीड़ित करना शुरू कर दिया। उसने अकारण परंतु घृणा के कारण अनेक संभली सरदारों के खेतों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, उनकी संपत्ति को छीन लिया तथा उन्हें बंदी कर लिया। इन बंदियों में उसने खीरू नामक एक संभली सरदार की पुत्री को भी हस्तगत कर लिया। खीरू अलादाद का एक सेवक था और शहना के पद पर कार्य करता था। उसके इस दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर सारे संभली सरदार एक शिष्टमंडल के रूप में मुबरेज खान के सामने आए और उससे कहा—''हमारी और आपकी स्त्रियों का सम्मान एक जैसा महत्व रखता है, अतः आपसे प्रार्थना है कि आप खीरू की पुत्री को छोड़ दें और हमारी स्त्रियों के सम्मान की रक्षा करें।'' यद्यपि संभली सरदारों ने बड़ी विनम्रता से उससे इस प्रकार की प्रार्थनाएं कीं, किंतु मुबरेज खान ने उनकी एक भी बात न सुनी। अंत में संभलियों ने विवशता और निराशा के कारण उसके विरुद्ध दृढ़ कार्रवाई करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने पुनः उसके पास जाकर उससे कहा—''आप हिंदुस्तान में उत्पन्न हुए हैं और इसीलिए आप अफगानों के स्वभाव से भलीभांति परिचित नहीं हैं। आपको यह जान लेना चाहिए कि एक सारस कभी एक बाज को स्वीकार नहीं कर सकता। हमने सम्राट और आपके प्रति बड़े आदरपूर्ण व्यवहार का परिचय दिया है। अब हमारी आप से प्रार्थना है कि आप हमें असहनीय कष्ट न दें और हमें अपनी इच्छानुसार यहां पर निवास करने की आज्ञा दें। आप खीरू की असहाय पुत्री को भी छोड़ दें।''

मुबरेज खान ने उनकी इन बातों को सुनते ही आवेश में आकर उनसे कहा—''तुम लोग खीरू की पुत्री के सम्मान की चिंता कर रहे हो और मैं अलादाद की पुत्री को भी उसके घर से उठा लाने का विचार कर रहा हूं।''

उसकी इस बात को सुनकर संभली सरदार भी आवेश में आ गए और उन्होंने उससे कहा—''आपको अपने प्राणों का ध्यान रखना चाहिए और सीमा के अंदर ही रहकर बातें करनी चाहिए। यदि आप हमारी स्त्रियों की इतनी अधिक बदनामी करने पर तुले हुए हैं तो हम आपको मौत के घाट उतारे बिना नहीं रह सकते। हम यह भी जानते हैं कि आपको मारकर हम शेरशाह के क्रोध के भी भागी बनेंगे और

उसके फलस्वरूप हमारे अनेक संभली सरदार मार दिए जाएंगे।''

मुबरेज खान ने उनका क्रोधपूर्ण उत्तर सुनकर अपने हिंदुस्तानी दरबानों को आदेश दिया कि लाठियों से मारकर इन संभली सरदारों को घर से निकाल दो, मैं यह अश्लील व्यवहार कदाचित सहन नहीं कर सकता। उसके आदेशानुसार उसके हिंदुस्तानी द्वारपालों ने संभली अफगानों को मारने के लिए लाठियां उठाईं और संभलियों ने भी, जो मुबरेज खान के अत्याचारों से बहुत अधिक पीड़ित थे, क्रोध में आकर द्वारपालों पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने अतिशीघ्र मुबरेज खान और उसके अनेक साथियों को मौत के घाट उतार दिया।

जब शेरशाह ने इस घटना का समाचार सुना तो उसने आजम हुमायूं के पास इस आशय का एक लिखित संदेश भिजवाया—''अफगानों में सूरी अफगान ही ऐसे हैं जो बहुत कम झगड़ालू हैं और यदि अन्य अफगान सूरियों को मारने लग जाएं तो एक भी सूरी जिंदा नहीं रह सकता। इन संभली अफगानों ने जो तुम्हारे वंश से संबंधित हैं, उपद्रव करके एक बहुत ही बुरा उदाहरण प्रस्तुत किया है। तुम्हें उन्हें दंड देकर अनुशासित करना चाहिए जिससे कि अन्य उपद्रवी इस प्रकार का दुस्साहस करके अपने नायकों के सिर न काट सकें।''

जब आजम हुमायूं नियाजी के पास यह संदेश पहुंचा तो उसने एक विशाल सेना संगठित करके संभलियों पर आक्रमण कर दिया। संभलियों ने भी अपने गांव छोड़ दिए और पहाड़ी दुर्गों की ओर भाग गए, जहां से उन्होंने सपरिवार काबुल की ओर चले जाने का निश्चय कर लिया।

जब आजम हुमायूं को संभली सरदारों के इस प्रकार से काबुल की ओर प्रस्थान करने की सूचना मिली तो वह चिंतित हो गया। उसने अपने मंत्रियों से विचार-विमर्श किया और उनसे कहा—''संभली सरदार मेरे भाई हैं। वह हमारे वंश के गौरव की वृद्धि के मूल हैं। यदि हम उन्हें बलात पकड़ने का साहस करते हैं तो वे भागकर काबुल चले जाएंगे और सम्राट यह समझेगा कि मैंने जानबूझकर उन्हें हिंदुस्तान से काबुल भगा दिया है। अतः हमें किसी न किसी प्रकार उन्हें वापस लौटा लेना चाहिए।''

फलतः उसने अपना एक दूत उन संभली सरदारों के पास भेजा और उनसे कहा—''मैंने इस दुर्घटना की सारी जांच करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि तुम लोग इसमें पूर्णतया निर्दोष हो और मुबरेज खान के अत्याचारों से तंग आकर ही तुमने ऐसा साहस किया है। अब तुम लोग लौट आओ और मैं तुम्हें शेरशाह के पास भेजकर उनसे तुम्हारी इस त्रुटि को क्षमा कर देने की याचना करूंगा। अफगानों की परंपरा के अनुसार सूरियों के साथ उत्पन्न वैमनस्य दूर करने के लिए हम नियाजी

अपनी अनेक पुत्रियों का सूरी सरदारों के साथ विवाह कर देंगे। अन्यथा शेरशाह तुम्हारे दो-तीन सरदारों को ही केवल मौत के घाट उतार कर तुम्हारे अपराध को क्षमा कर देगा। यह ठीक नहीं है कि आपका पूरा वंश देश निर्वासित कर दिया जाए और आपको अपना देश छोड़कर दूसरे देशों में दर दर की ठोकरें खानी पड़े।''

संभली सरदारों ने उसके पास विनम्रता से उत्तर भेजा कि—''हम संभली इस समय बड़ी कठिनाई में हैं, तथापि यदि सूरी सरदार हमपर आक्रमण करते हैं तो हम उनके विरुद्ध डटकर लड़ेंगे और उन्हें अपनी वीरता का परिचय देंगे। यदि आप सेना लेकर हमारे विरुद्ध बढ़ते हैं तो भी हम आपका सामना करेंगे, किंतु इसमें दोनों पक्षों की ओर से नियाजियों की ही मृत्यु होगी। यदि हम मारे जाते हैं तो आपको पश्चाताप होगा और यदि हम जीतते हैं तो आपकी ख्याति को बट्टा लगेगा। यदि आप वायदों और सौगंध द्वारा इस बात का संकल्प करें कि आपके पास आने पर हमें कोई क्षति नहीं पहुंचेगी तो हम सहर्ष आपकी सेवा में उपस्थित होकर आपकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए तैयार हैं।''

आजम हुमायूं ने उन्हें उत्तर दिया—''क्या तुम लोग समझते हो कि मुझे अपने वंश का कोई ध्यान नहीं है ? मैं अपने संबंधियों और भाई-बंधुओं को कभी क्षति नहीं पहुंचा सकता हूं।'' अंत में आजम हुमायूं ने उन्हें अनेक सौगंधों और वचनों से विश्वास दिलाया कि आपके प्राण एवं सम्मान सुरक्षित रहेंगे और उसपर विश्वास करके सारे संभली सरदार अपने परिवारों के साथ उसकी सेवा में वापस आ गए।

आजम हुमायूं ने अपने वचनों का पालन न करके अपने इन भाइयों के साथ छल-कपट का व्यवहार किया। उसने उन्हें घिरवा लिया और 900 संभली सरदारों को मौत के घाट उतरवा दिया। कहा जाता है कि जब आजम हुमायूं इन संभली सरदारों को मरवा रहा था तो कुछ नियाजियों ने उन्हें बचकर भाग निकलने का परामर्श दिया, किंतु संभलियों ने अफगानों के आदर को सुरक्षित रखते हुए कहा कि हमारे लिए भागकर कलंकित होने से कहीं अधिक अच्छा है परिवार सहित मर जाना, क्योंकि विद्वानों ने कहा है, ''मगजा दोस्तों जशन दारद—अर्थात मित्रों के साथ प्राण देना स्वर्ग में जाने के समान है।'' आजम हुमायूं ने जब अनेक संभली सरदारों को मरवा दिया तो उनकी स्त्रियों और बच्चों को बंदियों के रूप में शेरशाह के पास भिजवा दिया।

शेरशाह कभी किसी व्यक्ति को हानि पहुंचाने का इच्छुक न था। इस कारण उसने आजम हुमायूं के इस निर्दय कृत्य की निंदा की। उसने उसके पास यह लिखित संदेश भिजवाया—''आज तक किसी भी अफगान सरदार ने ऐसा घृणित नर-संहार

नहीं किया है। तुमने मेरे भय से अपने ही बहुसंख्यक भाई मार डाले हैं। तुमने यह अच्छा नहीं किया है।''

शेरशाह आजम हुमायूं को पंजाब के शासक के पद से च्युत करना चाहता था किंतु इसी मध्य कालिंजर के शासक कीरत सिंह पर चढ़ाई करनी पड़ी और वहीं उसका स्वर्गवास हो गया। अतः आजम हुमायूं पंजाब का शासक बना रहा। शेरशाह के मरने के बाद भी आजम हुमायूं ने उसके उत्तराधिकारियों के साथ बड़ा ही स्वामिभक्ति का व्यवहार किया।

शेरशाह के सत्तारूढ़ होते ही भारतवर्ष में समस्त विद्रोह शांत हो गए, अव्यवस्था समाप्त हो गई, चोरी-डाके समाप्त हो गए और सारी दुर्घटनाएं रुक गईं। उसके कठोर नियमों के भय से कर्मचारियों ने भ्रष्टाचार का मार्ग छोड़ दिया। उसके शासनकाल में चारों ओर शांति और सुव्यवस्था छाई हुई थी।

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित